देवो याति भुवनानि पश्यन्

—वेद

भुवन दीपक

मेष
बृष
मीन
मिथुन
कुंभ
कर्क
मकर
सिंह
धन
कन्या
तुला
वृश्चिक

ष्यकार
कृष्णाचन्द जोशी
एम. ए.

श्री पद्मप्रभुसूरि विरचित ग्रहभावप्रकाश नामक प्रश्नविषयक ग्रंथ

भुवन-दीपक

भाष्यकार तथा प्रकाशक

प्रो० कृष्णचन्द्र जोशी, एम. ए. बी. ए. (आनर्स)

डी. ए. वी. कालेज, जालन्धर ।

..करण १०००] १९५७ ईस्वी [मूल्य सवा दो रुपए

विषय-सूची

पाते ।

प्राक्कथन

ज्योतिर्विज्ञान के तीन मुख्य अङ्गों—सिद्धान्त, होरा और संहिता— को दो प्रधान भागों—गणित और फलित—में विभक्त किया गया है। फलित-ज्योतिष के अन्तर्गत जातक, ताजिक, प्रश्न, मुहूर्त्तादि विविध विषयों अथवा उपाङ्गों का समावेश होता है। इन उपाङ्गों में से प्रश्नशास्त्र को एक विशेष स्थान प्राप्त है। जातक और ताजिक शास्त्र के फलादेश कहने में जन्म के समय, स्थानादि का ज्ञान होना अनिवार्य है। प्रायः बहुधा लोग जन्म समय-स्थानादि से अनभिज्ञ होने के कारण अथवा जन्मपत्रियों के गुम होने या न बनवाने के हेतु ज्योतिष शास्त्र द्वारा लाभ नहीं उठा सकते। उनके हितार्थ इस विस्मयोत्पादक प्रश्नतंत्र का आविर्भाव हुआ। इसके अतिरिक्त हमारे दैनिक जीवन में घटने वाली घटनाओं; चिन्ताकारक प्रश्नों; विवादास्पद विषयों; विवाह, सन्तानादि शुभ कर्मों; चोरी-रिपु-रोग-संकटादि क्रूरकर्मों; नौकरी, व्यापार, व्यवसाय, लाभालाभ, औद्योगिक तथा कृषि-जन्य पदार्थों की मन्दा तेजी, जय पराजय, वृष्टि अनावृष्टि आदि अनेक विषयक प्रश्नों का यथार्थ बोध प्रश्नशास्त्र की सहायता से होता है। सच तो यह है कि ब्रह्मांड में कोई विषय ऐसा नहीं, जो प्रश्नशास्त्र की पहुँच से परे हो। इस शास्त्र के महत्त्व का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि केवल प्रश्नकालीन लग्न से ग्रहों की स्थिति द्वारा इन सब जटिल प्रश्नों का उत्तर सुगमता से दिया जा सकता है। मनोविज्ञान-शास्त्र को जाने बिना मनुष्य के हृदयंगत भावों को पढ़ कर उसके प्रश्न का यथार्थ बोध और ग्रहगति वशात् ठीक सुझाव कराना प्रश्नशास्त्र का ही काम है। साधारण पढ़ा लिखा जिज्ञासु भी इस के नियमों का अल्प समय में थोड़े ही प्रयत्न से अध्ययन करके बड़ी सुगमता से इस शास्त्र का सदुपयोग कर सकता है।

प्रश्न विषयक ग्रन्थ-रत्न-समूहों में "भुवनदीपक" को एक विशेष स्थान प्राप्त है, पर खेद का विषय है कि इस अनुपम ग्रन्थ पर लिखी गई समस्त टीकाओं में श्लोकों का हिन्दी में अनुवादमात्र ही दिया गया है। अतः पाठकवृन्द गुरु की सहायता के बिना ग्रन्थकर्ता के आशय को नहीं समझ पाते। आज तक किसी टीकाकार ने ग्रन्थकर्त्ता के मूल सिद्धान्तों के कारणों

को नहीं परखा । इस व्याख्या में विद्वज्जनों तथा जनसाधारण की उलझनों को ध्यान में रखते हुए ग्रन्थकर्त्ता के सिद्धान्तों का तुलनात्मक परिचय दिया गया है ताकि पाठकवृन्द श्लोकों को कण्ठस्थ करने की अपेक्षा उनके रहस्यों को समझ सकें । मैंने पहली बार राष्ट्रभाषा में इस ग्रन्थ की सरल, गवेषणात्मक एवं अन्वेषणात्मक, सोदाहरण सचित्र व्याख्या अपने निजी और पूर्वजों के अनुभव द्वारा अनुभूत सिद्धान्तों और आधुनिक वैज्ञानिक अनुसन्धानों के आधार पर की है। ग्रन्थकर्त्ता द्वारा दी गई विषयानुक्रमणिका के शीर्षकों से मेल न खाने वाले विषयों को पुस्तक की विषय-सूची के (क), (ख), (ग) आदि भागों में दर्शाया गया है, और पाठकों की सुविधा के लिए श्लोकों की अकारादि अनुक्रमणी भी अन्त में दे कर पुस्तक की उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है। "फलित-ज्योतिष और आधुनिक विज्ञान" शीर्षक में कैप्लर, टाइको, न्यूटन, आइन्स्टाइन, सर जेम्स जीन्स आदि प्रमुख वैज्ञानिकों की रचनाओं के हवाले दे कर फलित-ज्योतिष की सर्वोत्कृष्टता को सिद्ध किया गया है, जिससे फलित ज्योतिष पर आरोप लगाने वाले तथाकथित विज्ञानमनस्कों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन किया जाय ।

यद्यपि ज्योतिर्विज्ञान के मूल तत्त्वों को अवगत कराने और उनका फलादेश कहने में सिद्धहस्त होने का श्रेय मेरे गुरुवर पूज्यपाद पं० अमरनाथ जी ज्योतिषी, बस्ती गुजाँ, को प्राप्त है तथापि ऐसी अनुपलब्ध, वाञ्छनीय और सर्वांगीण टीका लिखने की मूल प्रेरणा मुझे "पञ्चाङ्ग दिवाकर" और "ज्योतिष मार्तण्ड" के सम्पादक ज्योतिषाचार्य पं० रामशरणदास जी से प्राप्त हुई है । उन्हीं के आग्रह पर यह पुस्तक जनता-जनार्दन के सम्मुख प्रस्तुत है । यदि इस से ज्योतिष-प्रेमियों को प्रश्नशास्त्र के जटिल विषय के सम्यग्ज्ञान में तनिक भी सहायता मिली तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा !

विद्वज्जनसेवी,

डी. ए. वी. कालेज,
जालन्धर ।

कृष्णचन्द्र जोशी
(प्रोफैसर)

फलित-ज्योतिष और आधुनिक विज्ञान

बीसवीं शताब्दी को सर्वसम्मति से विज्ञानयुग का नाम दिया गया है। सम्भवतः विज्ञान के क्षेत्र में जितनी उन्नति इस शताब्दी में हुई है वह पहले नहीं हो पाई थी। साइन्स के आधुनिक आविष्कारों ने संसार को चकित कर दिया है। यही कारण है कि आधुनिक काल में साइन्स ने संसार का इतना मुग्ध किया है कि इसकी बढ़ती हुई प्रतिष्ठा को देख कर विद्या के सभी अङ्गों को इसके साथ सम्बन्धित करने का फ़ैशन-सा हो गया है। इसी विचारधारा से प्रभावित हो कर सब से प्रथम आगस्टे काम्टे (Auguste Comte) ने अपने नवीन समाजशास्त्र को 'सामाजिक पदार्थशास्त्र' (Social Physics) अत: समाज को रचनाशास्त्र (Organism) के नाम से पुकारा था। सेंट ब्यूवे (Sainte-Beuve) ने साहित्यिक कौर जीवन-चरित्र सम्बन्धी अध्ययन को आत्मविद्या (Science of Souls) का नाम दिया था। टेन (Taine) ने अपने उपन्यास को मौलिक सिद्धान्तों (Fundamental laws) पर आधारित माना था। साधारणत: आजकल भी हमें साइन्स आफ़ इकोनौमिक्स, साइन्स आफ़ ग्रामर, साइन्स आफ़ लैंग्वेज तथा पोलीटीकल साइन्स, लायब्रेरी साइन्स आदि शब्दप्रयोग सुनने में आते हैं। और तो क्या इतिहास, अर्थशास्त्र एवं बदनाम और अनियमित नातिशास्त्र को सामाजिक विज्ञान (Social Sciences) की उपाधि से अलङ्कृत किया जा रहा है। सच तो यह है कि मानवविद्या की कोई भी शाखा ऐसी नहीं है जिसे साइन्स के अन्तर्गत न ला खड़ा किया हो ! और हैरानी इस बात की है कि प्रत्येक व्यक्ति निर्विवाद ऐसा मानता जा रहा है। किसी ने भी कभी इतना पूछने तक का साहस नहीं किया कि 'क्या पालेटिक्स अथवा इतिहास

आदि विज्ञान है ?' किन्तु यदि फलित-ज्योतिष सम्बन्धी चर्चा हो पड़े तो लोक बिना सोचे समझे अनायास प्रश्नों की बौछार करने लगते हैं : 'क्यों जी, क्या सचमुच फलित-ज्योतिष भी विज्ञान है ?'—और यदि आप उत्तर दें कि 'हाँ, यह विज्ञान है और शायद प्रत्येक साइन्स की जननी' तो वे नाक भौं चिढ़ाने लगेंगे और उन्हें आप के दिमाग़ की खराबी का सन्देह होने लगेगा। वस्तुतः आजकल की साधारण विचारमाला इस बात पर ज़ोर देती है कि फलित-ज्योतिष "विदीरित भ्रम-मात्र' है, जिसे भली भाँति दफ़नाया जा चुका है और जिसे पुनर्जीवित करना मूर्खता-सी है।

फलित-ज्योतिष विज्ञान होने का दावा इसलिए करता है कि इसका समस्त आधार अंतरिक्ष समूह के संयोग, दृष्टि आदि के सापेक्ष स्थिति पर आधारित वे अखडित वैज्ञानिक तथ्य हैं जिनकी सहायता से पृथ्वी और उसके निवासियों पर दृग्विषयों (Observed Phenomena) के प्रभाव का ज्ञान होता है। और विज्ञान की भाँति इसके नियमों का विन्यास, वर्गीकरण, परीक्षण, अनुसंधान एवं सिद्धान्तीकरण सिद्ध ही है। सच तो यह है कि फलित ज्योतिष वहाँ आरम्भ होता है जहाँ भौतिक-विज्ञान (Physics) अथवा ज्योतिर्पदार्थ-विज्ञान (Astro-Physics) का अंत होता है।

फलित ज्योतिष का आधारस्तम्भ

ज्योतिष का मूल तत्त्व वेदान्त के इस सूत्र पर निर्भर है कि 'यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह'*। दूसरे शब्दों में वेदान्त लौकिक और पारलौकिक, सूक्ष्मतम और स्थूलतम, प्रकृति और पुरुष, ब्रह्माण्ड और पिण्ड के मध्य में सामञ्जस्य का बोध कराता है। और यह धारणा पंडितों की कपोल-कल्पित ही न थी। आधुनिक विज्ञान मानता है कि परमाणु (Atom) एक सूक्ष्माकार सौर जगत् (Miniature Solar System) है अर्थात् परमाणु

*कठोपनिषद्, ४र्थ वल्ली श्लोक ११.

सौरजगत् का ही प्रतिरूप तथा अनुरूप है। पं० जवाहरलाल जी ने ठीक ही कहा है कि "वेदान्त न केवल अध्यात्मिक ही है बल्कि युक्तियुक्त भी और बाह्य प्रकृति के वैज्ञानिक अनुसन्धानों के अनुकूल*। डाक्टर ए. ऐल. बाशम (Dr. A L. Basham) लिखता है कि "प्राचीन भारत के प्रमाणु-सिद्धान्त संसार के भौतिक निर्माण सम्बन्धी प्रतिभा-सम्पन्न विधायक समाधान हैं। यद्यपि सम्भवतः वे संयोगवश आधुनिक भौतिक विज्ञान (Physics) के सिद्धान्तों के अनुकूल हैं तथापि वे प्राचीन भारतीय विचारकों के ज्ञान और कल्पना के प्रशंसक हैं।"‡ भौतिक विज्ञान के नवीनतम विकासों ने भी प्रकृति की एकता और अभिन्नता को सिद्ध किया है। लिंकन बार्नेट (Lincoln Bornett) हमारे आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक आइन्स्टाइन (Einstein) के विचारों का सार इन शब्दों में देता है : 'सही अर्थों में उसका आशय यह है कि प्रकृति के सब रूप—तारागण, ग्रह, प्रकाश, बिजली और सम्भवतः प्रमाणु के अन्तर्गत सूक्ष्म भाग भी व्यापक मूल सिद्धान्तों का अनुसरण करते हैं।' कार्ल के. डरो (Karl K Darrow) भी इसी पक्ष का समर्थन करता हुआ लिखता है कि 'यह विश्वास कि सब पदार्थ केवल एक तत्त्व मात्र से उत्पन्न हुए हैं इतना प्राचीन है जितना कि स्वयं विचारधारा। किन्तु हमारी नसल ही इतिहास में सर्वप्रथम प्रकृति की एकता को निराधार सिद्धान्त अथवा आशा रहित आकांक्षा के रूप में न ग्रहण करके विज्ञान के एक अटल नियम के तौर पर मानती है, जिसका प्रमाण स्पष्ट और तीव्र है। † ऐसा होने के कारण अन्तरिक्ष समूह का मनुष्यों के जीवन और व्यवसायों पर जो प्रभाव पड़ता है

---

*The Discovery of India, तीसरा सस्करण, पृष्ठ ३१५.

‡The Wonder That Was India, पृष्ठ ४ ७.

†The Renaissance of Physics, पृष्ठ ३०१.

उसे झुटलाया नहीं जा सकता । इ. ए. शेफ़र (E. A- Shafer) का मत है कि 'सजीव पदार्थ उन्हीं नियमों का पालन करते हैं जिनका निर्जीव पदार्थ ।'* आधुनिक युग के जगद्विख्यात दार्शनिक बर्ट्रांड रसल (Bertrand Russell) के मत में 'मनुष्य का शरीर पदार्थ विद्या और रसायन शास्त्र के उन्हीं नियमों का पालन करता है जिनकी कि निर्जीव प्रकृति ।'‡ इसीलिए शायद कवि बायरन (Byron) ने यहाँ तक कह दिया था कि "मैं अपने आप ही नहीं जी रहा, किन्तु मैं अपने चौगिर्दे का एक भाग-मात्र हूँ ।" सो मनुष्य प्रकृति से पृथक् वा भिन्न नहीं है । मानुषी भाग्य प्रकृति की तालबद्ध शक्ति का अंश है । श्री नेहरू जी लिखते हैं कि 'गत पच्चीस वर्षों में साइन्स-दान के पृथ्वी-सम्बन्धी भौतिक निर्माण के दृष्टिकोण में अत्यन्त परिवर्तन हुआ है । साइन्स की दृष्टि में प्रकृति मनुष्य से पृथक् और भिन्न समझी जाती थी, किन्तु सर जेम्स जीन्स (Sir James Jeans) हमें बताते हैं कि साइन्स का सारभूत यह है कि "अब मनुष्य अपने को प्रकृति से भिन्न नहीं समझता ।"'† इनोक पैन (Enoch Penn) का कथन है कि 'मानवजाति के जीवन में परिवर्तन तथा व्यवहार उन्हीं भिन्न और विविध रूपों द्वारा प्रेरक होते हैं जो ग्रहनक्षत्रादिकों से प्राप्त होते हैं । ये प्रभाव मानव शरीर पर ऐसे पड़ते हैं जैसे बिजली की लहरें रेडियो-सैट पर ।' इस से सिद्ध होता है कि प्रकृति की ग्रह, नक्षत्रादि बाह्य शक्तियों तथा सजीव और निर्जीव रूपों में घनिष्ट और अटूट सम्बन्ध है । सच तो यह है कि इन्हीं बाह्य शक्तियों ने सृष्टिमात्र को जन्म दिया है अतः उनके यथोचित प्रभाव को बहिष्कृत नहीं किया जा सकता ।

---

*हरदयाल द्वारा Hints for Self culture में उद्धृत पृ० २७

‡The Discovery of India पृ० ५३२ श्री नेहरू द्वारा उद्धृत ।

†The Discovery of India, पृष्ठ ५३२.

फलित-ज्योतिष की परम्परा

जे. डबल्यु. एन. सुलिवन (J. W. N. Sullivan) जिसकी गणना अखबार 'टाइम' ने संसार के चार-पाँच प्रमुख वैज्ञानिकों में की है, गणित तथा फलित-ज्योतिष के परस्पर सम्बन्ध को इन शब्दों में अङ्कित करता है : "वस्तुतः गणित-ज्योतिष का अध्ययन फलित-ज्योतिष के लिए ही किया जाता था। सच तो यह है कि फलित-ज्योतिष को गणित-ज्योतिष सम्बन्धा अनुसन्धानों का प्रमाण समझा जाता था।......इस में कुछ भी निन्दनीय नहीं है। इन प्राचीन गणित ज्योतिषियों को 'भ्रमग्रस्त' कह कर अवज्ञा करना ऐतिहासिक अज्ञानता के तुल्य है......सतारहवीं शताब्दी में भी कैप्लर जैसे प्रमुख वैज्ञानिक ने भी, भविष्यवाणी के लिए गणित-ज्योतिष का फलित-ज्योतिष के माध्यम के रूप में प्रयोग किया था।"* प्राचीन भारत में जीवन और कार्यक्षेत्र का पर्यवेक्षण करते हुए पं० जवाहर लाल नेहरू लिखते हैं कि "गणित ज्योतिष का विशेष रूप से अध्ययन किया जाता था और इसका अन्तर्भाव प्रायः फलित शास्त्र में होता था।"† कालरेज कहता है कि "किसी-न-किसी विधि का फलित-ज्योतिष गणित-ज्योतिष की पराकाष्टा है।" ऐमर्सन तो यहाँ तक मानता है कि 'गणित-ज्योतिष सर्वोत्तम है किन्तु इसे पूर्ण उपयोगिता के लिए आकाशमंडल में सीमित रहने की अपेक्षा क्रियात्मक रूप से जीवन में आना चाहिए।' अपने कथन का स्पष्टीकरण करते हुए एमर्सन कहता है कि 'फलित-ज्योतिष गणितज्योतिष का वह लौकिक रूप है जिसका सम्बन्ध मनुष्य की क्रियाओं से है।' नेपोलियन को ज्योतिष से बड़ी रुचि थी और उसने इस विषय पर एक पुस्तक की रचना भी की थी। योरुप में फलित-ज्योतिष के प्रचार के सम्बन्ध में एक

---

*The Limitations of Science पृष्ठ ८.

†The Discovery of India पृष्ठ ६७.

लेखक यूँ लिखता है : "मध्यकाल में लगभग प्रत्येक शासक एक ऐसे दैवज्ञ की नियुक्ति करता था जिस से न केवल विचार-विमर्श ही किया जाता था किन्तु वह प्रत्येक महत्त्वपूर्ण विषय पर तारागण और ग्रहों का निरीक्षण करके अन्तिम निर्णय देता था......यह जानकारी अतिरोचक है कि सर्व-प्रथम आधुनिक गणित ज्योतिषी टाइको (Tycho), कैप्लर और गलीलियो दैवज्ञ होने के नाते अपना निर्वाह करते थे और आज के विज्ञान-युग में भी यह वृत्ति क़ायम है* ।" आधुनिक ऐलोपैथिक भिषग्प्रणाली के पिता हिपाक्रर्स (Hippocrates) ने स्पष्ट रूप से घोषित किया था कि "वह मनुष्य जो फलितज्योतिष-विज्ञान से अनभिज्ञ है चिकित्सक कहाने की अपेक्षा मूर्ख कहाने का अधिकारी है ।" डाक्टरी, वनस्पति-शास्त्र तथा औषधिविज्ञान के प्रकाण्ड पण्डित निकोलस कलपैपर (Nicholas Culpeper) कहता है कि "केवल ज्योतिषी ही चिकित्सा शास्त्र के अध्ययन के पात्र हैं; फलित-ज्योतिष जाने बिना चिकित्सक उस दीपक के समान है जिस में तेल नहीं है ।" जिस समय मिस्टर हेली (Mr. Halley) ने न्यूटन के प्रति 'मुझे फलित ज्योतिष पर विश्वास नहीं है' आदि अवज्ञापूर्ण शब्द कहे तो आधुनिक पदार्थविद्या के पिता न्यूटन ने इन शब्दों में उसकी कड़ी भर्त्सना की : 'महाशय, तू ने इस विषय का अध्ययन नहीं किया पर मैंने किया है । आकाश-मंडल में हो रहे परिवर्तनों के अनुसार सांसारिक घटनाओं की गति पर अवलम्बित अनुभव ने इच्छा न रखते हुए भी मुझे फलित ज्योतिष पर विश्वास करने के लिए बाधित किया है ।' इसी प्रकार जान कैप्लर ने घोषित किया था कि 'ग्रहों के संयोग तथा दृष्टि के कारण सांसारिक पदार्थों की हो रही घटाबढ़ी तथा हलचल के लगातार अनुभव ने, न मानने

---

*Floyd C. Fairbanks in 'An Orientation in Science.' पृष्ठ १९.

की इच्छा रखते हुए भी, मुझे ज्योतिष शास्त्र को मानने और सराहने के लिए विवश किया है।' और उसने फलित ज्योतिष के मूलाधार सम्बन्धी एक पुस्तक की रचना भी की थी। सेंट जेरोमे (Saint-Jerome) के शब्दो में 'फलितज्योतिष मनुष्यों के लिए एक अत्यन्त उपयोगी विज्ञान है जो नियमों द्वारा सिद्ध, अभ्यास द्वारा परीक्षित तथा अनुभव द्वारा प्रमाणित है।' इङ्गलैंड के प्रथम राज-ज्योतिषी जॉन फलेम्स्टीड (John Flamsteed) (1646—1719) ने ग्रीनविच वेधशाला का शिलाधार रखन के लिए एक कुण्डली बनाई थी। यह कुण्डली आज तक विद्यमान है और इस से शुभमुहूर्त के लग्नादि का ज्ञान होता है। डाक्टर रिचर्ड गार्नेट (Dr. Richard Garnett) ने अपने अनुसन्धानों के आधार पर कहा था कि 'फलित ज्योतिष भूगर्भ-शास्त्र (Geology) के समान एक भौतिक विज्ञान है।' स्वतंत्रता की बागडोर सम्भालते हुए सन् १९४७ में भारत सरकार ने भी अनिष्टकारी यमघण्टक योग के प्रभाव से बचने के लिए शुभलग्न की प्रतीक्षा के समय में यथोचित परिवर्तन किया था!

उपरिलिखित प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि आदिकाल से ही प्रमुख कवि, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, शासक, जरनैल, वैज्ञानिक, रसायनशास्त्री, पदार्थ-विज्ञान-शास्त्री, गणितज्ञ, चिकित्सक, भूगर्भशास्त्री तथा सर्व साधारण जनता की इस विषय की ओर विशेष प्रवृत्ति रही है। परम्परा काल से ही इसकी छाप अविरत तथा अविच्छिन्न रूप से सब देशों और कालों के मनुष्यों के मनों पर अङ्कित रही है। बेल्ज़क (Belzak) ने ठीक ही तो कहा है कि "फलितज्योतिष एक अगाध और अमित विज्ञान है जिसने सदैव सर्वश्रेष्ठ मेधावियों पर अपना प्रभुत्व जमाय रक्खा है।"

आज के इस नवीन युग में ऐसे क्रमबद्ध, स्पष्ट एव लिखित प्रमाणों के उपलब्ध होते हुए भी यह एक प्रथा-सा बन रही है कि फलित-ज्योतिष निरा

भ्रमोत्पादक पाखण्ड है और 'दैवज्ञवृत्तिः' केवल छद्म अथवा कपट। प्रायः अशिक्षित, अर्द्ध शिक्षित वा गपोड़ संखों को देख कर ऐसी धारणा बना लेना तो केवल उन सन्देहग्रस्त व्यक्तियों के निजी घोर अज्ञान का सूचक है जो किसी विद्वान् के निकट जा नहीं पाए। क्योंकि इस विषय पर उन में कोई मत प्रकट करने की योग्यता तक नहीं है। कारण यह कि फलित-ज्योतिष एक ऐसा गम्भीर एवं जटिल विषय है, जिसके विशाल साहित्य का पूर्णतया अध्ययन किए बिना वैज्ञानिकों या अन्य विषयों के विद्वानों को उस पर अपना मत ठोंसने का अधिकार नहीं। प्रत्येक विज्ञान की अपनी निजी समस्याएँ और विशेष प्रविधियें अथवा तकनीकें (Techniques) होता हैं जिनमें कुशलता प्राप्त करने के लिए निरन्तर यत्न और अभ्यास की आवश्यकता है। फलित-ज्योतिष इस नियम का अपवाद नहीं। एक सफल, कार्यकुशल और अनुभवी दैवज्ञ बनने के लिए मनुष्य को चिरकाल तक शिष्यत्व का कष्ट सहना पड़ता है। बिना इस कष्ट को सहे यह धारणा बना लेना कि ब्रह्मांड में किसी ऐसा वस्तु का अस्तित्व ही नहीं हो सकता, जो आधुनिक पदार्थ विज्ञान के नियमों के अनुकूल न हो, निःसार और हास्यप्रद है। कारण यह कि आए दिन आधुनिक पदार्थ विज्ञान के सिद्धान्तों में परिवर्तन हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त पदार्थ विज्ञान (Physics) यह बताने में बिल्कुल असमर्थ है कि क्यों हमें सुख दुःख, राग द्वेष, काम क्रोध, लोभ मोहादि का आभास होता है। विज्ञान यह भी नहीं बता सकता कि मनुष्यों के स्वभाव, रुचियों आदि में क्यों भिन्नता है? क्यों एक पुरुष का स्वभाव प्रचण्ड वा सौम्य, उद्यमी, आलसी वा दीर्घ-सूत्री, स्थिर वा चञ्चल, धीर वा अधीर, मूढ़, चपल वा भ्रामक, आशावादी वा निराशावादी है। न ही साइन्स ने किसी ऐसी वस्तु का निर्माण ही किया है जिसकी सहायता से हमारे पारस्परिक सम्बन्ध-विच्छेदक—ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कुमति, असूया आदि—कारणों को मापा वा रोका जा सके। 'मनुष्य' स्वयं हमारे सब से अधिक रहस्य का विषय है और किसी भी

वैज्ञानिक नाप-तोल या परीक्षा-नालिका द्वारा उसका रहस्योद्घाटन नहीं हो सका। मानवप्रकृति अभी तक किसी संख्यामान की अवस्था में न तो लाई जा सकती है और न ही दशमलव के तीन स्थानों तक नापी ही जा सकती है। अब तक के प्रयोगशाला द्वारा किए जा रहे अनुसन्धानों पर जीवन का आधार अवलम्बित नहीं हो सकता। यहाँ पहुँच कर साइन्स के नियम लड़खड़ाते हुए, पिंगल तथा असफल होने लगते हैं। बङ्गाल की राष्ट्रीय तालीमी संघ की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर भाषण देते हुए भारत के उच्च कोटि के विद्वान् और दार्शनिक, डाक्टर सर राधाकृष्णन् ने चेतावनी दी कि "विज्ञान के आविष्कार व्यावहारिकरूप में इतने प्रभावोत्पादक हैं कि जनता को विवश हो कर मानना पड़ता है कि विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार चलने वाला भौतिक जगत् ही एकमात्र ब्रह्मांड है। रेडियो, टेलीफोन, वायुयान, पेन्सलीन, पलास्टिक्स, विस्फोटक पदार्थ तथा प्रमाणु बम, चाहे उनका उपयोग अच्छा या बुरा हो, विज्ञान की उपज हैं। किन्तु इस से प्रकृति की सर्वशक्तिमत्ता का नहीं अपितु मनुष्यात्मा की सर्वशक्तिमत्ता का बोध होता है। विज्ञान सारी वा सम्पूर्ण समस्याओं को सुलझाने का दावा नहीं करता। अनेक ऐसे मण्डल या विषय हैं, जहाँ विज्ञान के आदेश या सिद्धान्त प्रवेश तक नहीं पा सके। सत्य और असत्य, उचित और अनुचित, रूप और कुरूप आदि अनेक विषय हैं, जो विज्ञान की पहुंच से परे की वस्तु हैं। गुणों के क्षेत्र और वैज्ञानिक तथ्यों के क्षेत्र में भिन्नता है।"❀ लिन् यूतंग (Lin Yutang) ने ठीक ही तो कहा है कि "सत्य के प्रति हमारी समस्त भावना वैज्ञानिक प्रशिक्षण द्वारा इस सीमा तक कलुषित हो गई है कि हम ऐसे तथ्य को भी मानने को प्रस्तुत नहीं, जो किसी इंजन या भाप के बेलचे (Steam Shcvel) को नहीं चला सकता।" ऐसे ही लोगों के प्रति शेक्सपियर ने भी

❀ कलकत्ता 17 मार्च 1956 (पी० टी० आई रिपोर्ट के आधार पर)

भर्त्सनापूर्वक कहा था कि 'ब्रह्मांड में ऐसे अनेक पदार्थ हैं जो तुम्हारे दर्शन की पहुँच से परे के हैं।" ट्राउन एडवर्डस् (Tryon Edwards) ने भी ठीक कहा है कि "अन्ध विश्वास अधिकतर महान् तथ्यों की ध्वंसावशेष छाया के प्रतिरूप हैं।" ऐसे ही सन्दिग्ध मनस्कों के प्रति रोम लैंडो (Rom Landau) अपनी पुस्तक Human Relations † में अधोलिखित शब्दों द्वारा सम्बोधित होता है :

'एक साधारण नागरिक जिसे जनता के सम्मुख आने का अवसर कभी प्राप्त नहीं होता, और न ही जो कभी किसी कठिन साहसक्रिया का खतरा ही मोल लेता है, अपने निजी धर्म द्वारा लगाए गए प्रतिबन्धों में ही श्रद्धा रखता है। व्यावहारिक जीवन में उसका ऐसे टोने, जादू और तावीजों में भी विश्वास है, जिनका सम्बन्ध कुछ विषयों या नामों, तिथियों, आकारों, ग्रहों या राशियों से है, जो कि जीवन पर विशेष प्रभाव डालते हैं। यदि ऐसा ना हो तो नब्बे प्रतिशत ज्योतिषादि अलौकिक विषयों पर छप रहे पत्र-पत्रिकाओं का, सर्वथा लोप हो जाए, जिनका प्रचार आधुनिक मनुष्य के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के होते हुए भी समस्त संसार में हो रहा है।

प्राचीन प्रणाली-व्यवस्था को अपनाने वाला रूढ़ीवादी किसान, जो चन्द्रछटा की घटाबढ़ी के अनुसार बीजारोपण आदि अनेक कार्य करता है, ज़रूरी नहीं अन्धविश्वासी और जड़मति ही हो। सम्भवतः वह कुछ सामयिक ताल (Time Rhythms) तथा उनके प्रकृति के साथ पारस्परिक सम्बन्धों पर आधारित, स्वाभाविक अथवा परम्परागतप्राप्त ज्ञानराशि के कारण ही ऐसा किए जा रहा हो। अपने शिशु के रोग की चिकित्सा डाक्टर द्वारा विहित गोलियों की अपेक्षा ग्राम्योषधि द्वारा दूर करने वाली ग्रामीण स्त्री, हो

---

† Faber and Faber Ltd. 24, Russell Square, London (1948).

सकता है प्रकृति तथा मानव शरीर सम्बन्धी ऐसे ज्ञान से प्रेरित हो कि जिसे चिकित्साशास्त्र ने अभी पुनरुपलब्ध करना आरम्भ ही किया है। वह मनुष्य, जो अपने जीवन के प्रत्येक सप्तवर्षीय चक्र की सावधानी से प्रतीक्षा करता है और अपने आप को संकट से बचाने का यत्न करता है, आवश्यक नहीं, अन्धविश्वासी, मूढ़ वा अज्ञ हो, जो सप्तमांक को भाग्यशाली समझता हो। सम्भव है, वह इस बात से परिचित हो कि मानव जीवन संख्यात्मिक तालों द्वारा नियमबद्ध है तथा कुछ अवस्था तक शरीर में महान् परिवर्तन (Climacteric changes) होते रहते हैं। दुर्भाग्य से लोगों का बहुमत ऐसे ज्ञान का, जिसका उसे बोध है, 'भाग्यशाली' अथवा 'मनहूस अङ्क' कह कर कल्पित सिद्धान्त के रूप में उसे गिरा देता है।

यथार्थ मानसिक गुणों से सम्पन्न पुरुष कदापि दम्भी नहीं हो सकता यदि वह घोषित करता है कि अमुक गृह या स्थान का जलवायु कल्याणकारी अथवा हानिकारक है। दुर्भाग्यवश अन्धविश्वासी लोग ऐसे मानसिक ज्ञान को 'अभिशप्त' अथवा 'मनहूस गृहादि' कह कर भद्दे विश्वास में परिणत कर देते हैं।......विज्ञानमनस्क ('Scientific'-minded) पुरुष अनेकों विषयों को 'मूर्खतामात्र' कह कर त्याग देता है, क्योंकि उनके अन्तर्हित तथ्यों को वह अभी तक पदार्थ विज्ञान के नियमों द्वारा सिद्ध करने में असफल रहा है। सम्भव है वे तथ्य केवल उन उपायों द्वारा ढूँढे जा सकें, जिन्हें हम साधारणतया तान्त्रिक अथवा अलौकिक (Occult) कहते हैं। वस्तुतः ये 'भ्रम' अर्ध-विस्मृत गूढ़-ज्ञान के अवशेष-मात्र हैं। इनका घनिष्ट सम्बन्ध उन चिन्हों या प्रतीकों से है, जो न केवल हम आधुनिकों को मान्य ही हैं, बल्कि आदरणीय भी। क्या ईसाइयों अथवा अन्य धर्मानुयायियों के भक्तिमार्ग (Liturgy) उस सचाई के 'अन्धविश्वासमूलक' भावों के प्रतीक नहीं, जिसका हम में से किसी को बोध नहीं, और जिसे हम केवल उनके

प्रतिरूप में ही मानते हैं ? इसी प्रकार हमारी अनेक राष्ट्रीय तथा नागरिक प्रथाएँ हैं । यद्यपि भौतिकवादी को वे अन्धविश्वासमूलक ही प्रतीत होती हैं, तथापि वे यथार्थतः उन प्राचीन तथ्यों की व्यञ्जना करती हैं जो चिरकाल से अन्तर्ज्ञान की अपूर्णता और अधिक वैज्ञानिक खोज के बोझ तले दबी पड़ी हैं ।"

यहाँ टोने, जादू, तावीज़, यंत्र, मंत्र, तंत्रादि अनेक अलौकिक विषयों पर विचार नहीं किया जा रहा । इस लेख का अभिप्राय केवल इस बात को स्पष्ट करना है कि आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी लोगों की प्रवृत्ति ज्योतिष आदि गम्भीर विषयों की ओर बढ़ती जा रही है । विद्वानों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित हो रहा है और उनके यत्नों द्वारा विज्ञानमनस्कों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन हो रहे हैं । हमें केवल इतना कहना है कि फलित ज्योतिष एक अगाध समुद्र है और जातक-विषय उसकी एक शाखा है जिसका सम्बन्ध बाह्यप्रकृतिस्थ ग्रह-राशि-तारागणादि से प्राप्त किरण-पातनों (Radiations) से है, जो मनुष्य के जीवन और क्रियाओं पर अपना प्रभाव डालते हैं । फलित-ज्योतिष एक महान और व्यापक विज्ञान है जिसके अन्तर्गत जीवन के सभी क्षेत्रों और संसार-चक्र में हो रहे समस्त विषयों का समावेश हो रहा है । फलित-ज्योतिष द्वारा भूकम्प के झटकों और उनके प्रभावादि का ज्ञान बहुत काल पहले बिना भूकम्पयंत्र (Seismograph) की सहायता के हो सकता है और होता भी रहा है । वापीडमान अथवा आकाशतोलनयंत्र (Barometer) की सहायता के बिना यह ऋतुसमाचार कई मास पूर्व बता सकता है और आधुनिक वैज्ञानिक यंत्रों की सहायता के बिना ही ज्वालामुखी-विस्फोट, बाढ़ समय, वनस्पतियों की अवस्था, औद्योगिक प्रगति अथवा ग्लानि, खाद्य अथवा द्रव्यादि भावों की घटाबढ़ी, मंडियों के उतार चढ़ाव आदि बताने में समर्थ है । हमारा शारीरिक और मानसिक व्यवहार

भी उन बिजलीकणों (Ions) की गति पर अवलम्बित है, जो वायु में से सांस द्वारा हम पर प्रभाव डालते हैं। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र ने सिद्ध किया है कि हम केवल धमनियों (Nerves) का पुञ्ज ही तो हैं, जिनका व्यवहार निदर्शनादि, इन्हीं बिजली कणों क प्रवाह पर आश्रित है। मनुष्य की चित्तवृत्तियों का भी आंत्रिक ग्रन्थियों (Endocrines) के स्रावों से अटट सम्बन्ध है। किरणपातनों (Radiations) के भेदों के कारण ही शारीरिक और जैविकीय (Biological) प्रभावों की उत्पत्ति होती है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने अनुसन्धानों के आधार पर इसे प्रमाणित भी किया है। मनुष्य सचमुच एक विद्युज्जनित्र या बिजली के डैनिमो (Electrical Dynamo) के समान है। प्रत्येक कर्म या विचार के साथ ही, ये बिजली की धाराएँ या वेग (Currents) मीलों तक तंग तन्तुओं (Narrow Fibres) में इस प्रकार प्रवेश करते हैं, जिस प्रकार केन्द्रीय बिजली के प्रवाह म्युनिसिपैल्टी की तारों पर संचरण (Transmit) करते हैं। जो भोजन हम खाते हैं वह हमारे कायव्यूह रूपी बिजलीघर को चलाने के लिए ईंधन के समान हैं। आंत्रिक-ग्रन्थियां (Endocrine Glands) उस बिजली-व्यवस्था के नियंत्रण कमरे हैं। यही नियंत्रण-कमरे हमारे चारों ओर की बाह्य उत्तेजनाओं के प्रति अतीव सचेतन हैं। रूस के जगद्विख्यात वैज्ञानिक प्रोफैसर Tchijivsky ने अपनी खोजों के आधार पर सिद्ध किया है कि जन-समूह में सब से अधिक संक्षोभ या उपद्रव, सूर्य पर अधिक क्षोभ के समय ही हुए हैं, तथा मनुष्य जाति के सामूहिक आन्दोलनों के समय प्रदर्शित तेजक्रम और सौर उत्पातों में पारस्परिक सम्बन्ध है। इस क्षोभ काल के कारण मनुष्य के मन और धमनियों पर पड़ने वाला प्रभाव प्रायः सौर धब्बों की पराकाष्टा (Sunspot Maxima) के समय होता है।

इन तथ्यों को सामने रखते हुए समदर्शी विद्वान् बिना पक्षपात के

स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि फलित-ज्योतिष एक व्यापक साइन्स है और इसका अध्ययन कितना उपयोगी है। अतः आज के सभी वर्ग के विद्वद्वर्ग को इस 'फलित-ज्योतिष' ज्ञान-रहस्य को व्यर्थ वा सारहीन न कह कर, इसकी गम्भीर गवेषणा पर बल देना चाहिए। यदि इस रहस्य के सुलझाव में तनिक भी सफलता मिल गई, तब यह विषय मानवता की रक्षा, सुधार वा उन्नति में विज्ञान से भी कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध होगा !

श्रीः ।

अथ

श्रीपद्मप्रभुसूरिविरचितः

[ग्रहभावप्रकाशाख्यः प्रश्नशास्त्राद्भुतग्रन्थः]

भुवनदीपकः

सोदाहरण—भाषाटीकोपेतः ।

आरम्भ में ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये ग्रन्थकर्त्ता नमस्कारात्मक एवं वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचार करते हैं—

सारस्वतं नमस्कृत्य महः सर्वतमोपहम् ।

ग्रहभावप्रकाशेन ज्ञानमुन्मील्यते मया ॥ १ ॥

अर्थ—सकल अन्धकार को नाश करने वाले सरस्वती सम्बन्धी तेज को नमस्कार करके ग्रहभावप्रकाश ग्रन्थ द्वारा [अथवा नवग्रह और द्वादशभाव सम्बन्धी व्याख्या द्वारा] ज्ञान को मैं प्रकट करता हूं ॥ १ ॥

व्याख्या—संस्कृत के प्राचीन तथा अर्वाचीन ग्रन्थकार परंपरागत प्रणाली का अनुसरण करते हुए अपनी रचनाओं के आदि में मङ्गलाचरण करते देखे गये हैं। यह मंगलाचार तीन प्रकार से किया जाता था, (१) आशीर्वादात्मक (२) नमस्कारात्मक, और (३) वस्तुनिर्देशात्मक—'**आशीः नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वाऽपि तन्मुखम्**'। आशीर्वादात्मक मंगलाचार द्वारा इष्टदेव का आवाहन करके प्रार्थना की जाती थी, जैसे '**ब्रह्मा पातु वः**' अर्थात् 'ब्रह्मा आपकी रक्षा करे'। नमस्कारात्मक मंगलाचार द्वारा किसी देवता, गुरु आदि को

नमस्कार किया जाता था, जैसे '**मुनित्रयं नमस्कृत्य**', और वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचार द्वारा वर्णनीय विषय प्रयोजन सम्बन्धी संकेत होता था, यथा '**अस्त्युत्तरस्यां दिशि**'। इसी शिष्टाचार को सम्मुख रखते हुए यहां आचार्य ने प्रारम्भ में ही सरस्वती सम्बन्धी तेज को नमस्कार करके और ग्रहभावप्रकाश ग्रन्थ की रचना द्वारा ज्योतिर्विज्ञान विषयक संकेत करके नमस्कारात्मक और वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचार को एक साथ कह कर अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय दिया है। ग्रन्थकार ने विषय प्रयोजन सम्बन्धी संकेत द्वारा दैवज्ञों का ध्यान भी आकर्षित किया है क्योंकि कहा भी है कि "**सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्। यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्केन न गृह्यते।**"

सरस्वती सम्बन्धी तेज को इसलिये नमस्कार किया गया है क्योंकि सरस्वती वागीश्वरा अर्थात् वाणी की अधिष्ठात्री या देवी है और उसका ज्ञानरूपी तेज अज्ञानरूपी सकल अन्धकार को दूर करता है। इसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र भी ग्रहराशिनक्षत्रों द्वारा सांसारिक अन्धकार को दूर करता है [**ज्योतिषं नयनं स्मृतम्**]। इस के अतिरिक्त ग्रन्थकर्त्ता का भाव यह भी प्रतीत होता है कि मेरे ग्रन्थ द्वारा फलादेश कहने वाले दैवज्ञों की वाणी पर सरस्वती का पूर्ण अधिकार है अर्थात् सरस्वती की भाँति वाग्सिद्धि होती है। उदाहरणार्थ संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ दशकुमारचरित के कर्त्ता दण्डी कवि ने भी इसी कारण सरस्वती से वाग्सिद्धि का वरदान मांगा है—'**मानसे रमतां नित्यं सर्वशुक्ला सरस्वती**।' श्रीमन्महाकविभारविकृत किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के टीकाकार श्रीगतिरामशर्म्मा ने भी टीका करने से पहले सरस्वती देवी को इसी कारण आदि में प्रणाम किया है,

यथा—"नौमि तां वागधिष्ठात्रीं शारदां वुद्धिरूपिणीम् । यत्प्रसादात् सुमतयो जायन्ते मन्दवुद्धय : ।"

यद्यपि "ग्रहभावप्रकाशेन" का दूसरा अर्थ 'नवग्रह और द्वादश राशियों के व्याख्यारूप प्रकाश द्वारा' हम ने कोष्ठ के अतर्न्गत दे दिया है, तथापि हमनें इस से 'ग्रहभावप्रकाश' नामक ग्रन्थ का ही ग्रहण किया है। इसका कारण यह है कि आचार्य पद्मप्रभुसूरि ने स्वयं इस ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक १७० में ऐसा ही किया है, यथा— 'ग्रहभावप्रकाशाख्यं शास्त्रमेतत्प्रकाशितम्' अर्थात् 'यह ग्रहभावप्रकाश नामक ग्रन्थ मैं ने प्रकाशित किया है।' इसी अर्थ के ग्रहण करने से ग्रन्थ के प्रचलित नाम 'भुवनदीपक' की सार्थकता पर भी प्रकाश पड़ता है ॥ १ ॥

मंगलाचरण के अनंतर "भुवन दीपक" के छत्तीस द्वारों में दी गई विषयानुक्रमणिका को नौ श्लोकों द्वारा कहते हैं —

गृहाधिपा उच्चनीचा अन्योन्यं मित्रशत्रव : ।
राहोर्गृ होच्चनीचानि केतु र्यत्रावतिष्ठते ॥ २ ॥

अर्थ—१ द्वार में द्वादश गृहों [मेषादि बारह राशियों] के पति, २ में ग्रहों के उच्च और नीच, ३ में ग्रहों के परस्पर मित्र और शत्रु ४ में राहु के गृह [क्षेत्र], उच्च और नीच, ५ में केतु की स्थिति बारे ॥ २ ॥

स्वरुपं ग्रहचक्रस्य वीक्ष्यं द्वादशवेश्मसु ।
निर्णयोऽभीष्टकालस्य यथालग्नं विचार्यते ॥ ३ ॥

अर्थ—६ में ग्रहों के स्वरुपादि, ७ में द्वादश भावों द्वारा विचारणीय विषय, ८ में इष्टकाल का निर्णय, ९ में लग्न सम्बन्धी विचार ॥ ३ ॥

ग्रहो विनष्टो यादृक्स्याद्राजयोगचतुष्टयम् ।
लाभादीनां विचारश्च लग्नेशावस्थिते: फलम् ।। ४ ।।

अर्थ—१० में विनष्ट ग्रह का लक्षण, ११ में चार प्रधान योगों बारे, १२ में लाभालाभ का विचार, और १३ में लग्नेश की स्थिति का फल ।। ४ ।।

गर्भस्य क्षेममेतस्य गुर्विण्या : प्रसवो यदा ।
अपत्य युग्मप्रसवो ये मासा गर्भसंभवा :।। ५ ।।

अर्थ—१४ में गर्भ का कुशलता आदि, १५ में गर्भवती के प्रसव का समय, १६ में यमल [युगल] की उत्पति, १७ में गर्भ के महीनों की संख्या ।। ५ ।।

धृता विवाहिता भार्या विषकन्या यथा भवेत् ।
भावान्तगो ग्रहो यादृग्विवाहादि विचारणा :।। ६ ।।

अर्थ –१८ मे स्त्रा का धरेल या विवाहित होना, १९ में विषकन्या (कुलघातनी स्त्री) का निर्णय, २० में भाव के अन्त में स्थित ग्रह का फल, २१ में विवाहादिक विचार ।। ६ ।।

वक्तव्यता विवादस्य संकीर्णपदनिर्णय : ।
निश्चयो दीप्तपृच्छासु पथिकस्य गमागमौ ।। ७ ।।

अर्थ—२२ में विवाद [लड़ाई झगड़े में जय पराजय] का कथन, २३ में संकार्णपद का निर्णय, २४ में दीप्तप्रश्न [प्रवासी का मरण, वन्धनादि], २५ में प्रवासी का आना जाना ।। ७ ।।

मृत्युयोगो दुर्गभङ्गश्चौर्यादि स्थानसप्तकम् ।
क्रयणकार्यविज्ञानं नौमृत्युबन्धनत्रयम् ।। ८ ।।

अर्थ—२६ में मरण योग, २७ में किले का टूटना, २८ में चोरी आदि सात स्थान, २९ में क्रयविक्रय और मन्दा तेजा का ज्ञान, ३० में नौका, मरण और बंधनादि तीनों का विचार ।। ८ ।।

लाभादयो दिनेऽतीते फलं मासस्य लग्नपात् ।
द्रेष्काणादेः फलं सर्वं दोषज्ञानं महाद्भुतम् ॥ ९ ॥

अर्थ—३१ में व्यतीत दिन का लाभालाभ, ३२ में लग्नेश द्वारा मास फल, ३३ में द्रेष्काणादि द्वारा संपूर्ण फल, ३४ में महान् अद्भुत दोषों का जानना ॥ ९ ॥

दिनचर्या नृपादीनां गर्भेऽस्मिन्कि भविष्यति ।
षट्त्रिंशदस्मिन्द्वाराणि ग्रन्थे भुवनदीपके ॥ १० ॥

अर्थ—३५में राजादिकों का दिनचर्या, ३६ में इस गर्भ में क्या होगा ? आदि छत्तीस द्वार इस "भुवनदीपक" ग्रन्थ में हैं ॥ १० ॥

नोट—इस भुवनदीपक ग्रन्थ में दिए गये श्लोकों की कुल संख्या १७० है। इन में से पहला श्लोक मंगलाचरण, नौ श्लोक विषयानुक्रमणिका और एक श्लोक [१७० वां श्लोक] उपसंहार का, अर्थात् ग्यारह श्लोकों को छोड़कर शेष १५९ श्लोकों द्वारा इस अद्भुत ग्रंथ के विषय का निरूपण और प्रतिपादन किया गया है। किन्तु ३६ द्वारों में दिये गये १५९ श्लोकों को इस ढंग से बाँटा गया है कि सात द्वारों में केवल एक एक, सात द्वारों में केवल दो दो और केवल एक [छटे] द्वार में २० तक श्लोक दिये गये हैं। कुछेक द्वारों में वर्णित श्लोक उक्त विषयानुक्रमणिका के अनुकूल भी नहीं हैं, यथा ३६वें द्वार का शीर्षक 'गर्भादिप्रश्नद्वार' दिया गया है किन्तु उस द्वार में केवल एक श्लोक द्वारा गर्भ [पुत्रकन्याजन्म] सम्बंधी विचार है और शेष श्लोकों में 'स्त्री द्वारा पूछे गये पति या पुत्र संबंधी प्रश्नोत्तर विधि,' 'निहित धन का लाभालाभ', 'भावों के कारक,' 'एक ही समय में अनेक प्रश्नों के उत्तर देने की विधि' आदि विषय वर्णित हैं। हम ने पाठकों की सुविधा के लिये 'विषय सूची' में उन द्वारों के नीचे [क], [ख], [ग] आदि भाग। में वे विषय भी दे दिये हैं जिन का संकेत द्वार के शीर्षकों से भिन्न हैं।

अथ गृहाधिप द्वारम । १ ।

अब दो श्लोकों द्वारा ग्रंथ के मूल लेखक आचार्य पद्मप्रभुसूरि राशियों के स्वामित्व पर प्रकाश डालते हैं—

मेषवृश्चिकयोर्भौमः शुक्रो वृषतुलाभृतोः ।
बुधः कन्यामिथुनयोः कर्कस्वामी तु चन्द्रमाः ॥ ११ ॥
स्यान्मीनधन्विनोर्जीवः शनिर्मकरकुंभयोः ।
सिंहस्याधिपतिः सूर्यः कथितो गणकोत्तमैः ॥ १२ ॥

अर्थ मेष और वृश्चिक का मंगल, वृष और तुला का शुक्र, मिथुन और कन्या का बुध, तथा कर्क का स्वामी चन्द्रमा है ॥ ११ ॥ धनु और मीन का जीव [बृहस्पति], मकर और कुम्भ का शनि, तथा सिंह का स्वामी सूर्य है, ऐसा उत्तम ज्योतिषियों ने कहा है ॥ १२ ॥

व्याख्या—यहां पर मेषादि द्वादश राशियों और सूर्यादि सप्त ग्रहों के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार किया जा रहा है। इसे भली भाँति समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि राशिचक्र आकाश-मंडल का वह गोलाकार भाग है जिस में सूर्यादि ग्रह सदा भ्रमण करते हैं। इस विशेष स्थान को बारह भागों में विभक्त किया गया है और प्रत्येक भाग को राशि कहते है। 'राशि' संस्कृत में समूह या ढेर को कहते हैं। हिन्दी, उर्दु और पंजाबी में इसे 'रास' भी कहा जाता है, क्योंकि वास्तव में राशि या रास ताराओं का समूह ही है। बस्तुतः राशिचक्र एक स्थायी निर्देशाधार है। यह एक दिव्य शंकुयंत्र अथवा प्राकृतिक बृहत् घटी है। राशिचक्र की बारह राशियें वे बारह संख्यावाचक चिन्ह हैं जिन के द्वारा कालचक्र को मापा जाता है। सूर्य और चन्द्र इस बृहत् घटी की दो सूइएं हैं जो काल निर्देश करती हैं। अर्थात् जब चन्द्र बारह अंश सामान्य गति से चलता है तो सूर्य केवल

एक अंश ही दिन रात में तय करता है। समस्त घटी यंत्र इसी बृहत् दिव्य घटी का ही प्रतिरूप हैं। इन्ही राशियों की सहायता से सूर्य, चन्द्र तथा अन्य ग्रहों की गति, युति, स्थिति आदि का बोध होता है। राशिचक्र द्वारा न केवल गणित-ज्योतिषियों और दैवज्ञों को ऋतु, मासादि का ज्ञान ही होता है, प्रत्युत् यह एक अमोघ तुलायंत्र है, जो ग्रहों की गति, स्थिति आदि की सूचना देता है।

विदित रहे कि प्राचीन काल की धूप घड़ी या जल घटी से लेकर आधुनिक काल की अनेक प्रकार की यांत्रिक घड़ियों का मिलान इसी राशि चक्र-आकाशस्थ वृहत् घटी—से होता रहा है और आगे भी होता रहेगा पर मशीनी घड़ियों के टाइम में घटाबढ़ी हो सकती है किन्तु राशि-चक्र रूपी बृहत् घटी के टाइम में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त युद्ध, विभाजन आदि कारणों से देशों की सीमाओं में परिवर्तन आ सकता है। दरिया अपने रूख को बदल सकते हैं। समुद्र शुष्क हो सकता है और पहाड़ों का सफ़ाया भी हो सकता है। पृथ्वी पर बनाए घंटा घरों या वेधशालाओं का नाश भी हो सकता है। अतः स्थायी प्रसंगाधार के लिये आकाशस्थ राशिचक्र पर ही निर्भर होना पड़ेगा। क्योंकि कालगणना का मूलाधार गति (Motion) पर अवलंबित है इसलिए सूर्य, चन्द्रादि ग्रहों की गतियों के कारण ही हमारी कालगणना का आरम्भ हुआ हैं। और इन गतियों का अनुमान इसा राशिचक्र द्वारा ही लगाया जाता है।

स्मरण रहे कि सूर्य यौर चन्द्र ग्रहों में प्रधान होते हुए भी एक एक राशि के पति हैं और अन्य ग्रह गौण होते हुए भी दो दो राशियों के स्वामी हैं। इसका कारण यह है कि सूर्य और चन्द्रमा राजा होने के कारण चक्रार्ध (छः राशियों) के स्वामी हैं। पर

ग्रहाधिपति सूर्य ने सब से वली होने के कारण राजराशि सिंह को अपना गृह बनाया और चन्द्रमा ने मित्रवशात् कर्क राशि को अपना गृह बनाया । तदनन्तर सिंहादि क्रम से छ: राशिएं अर्थात् सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु और मकर सूर्य के अधिकार में और कर्क से विलोमक्रम से छ: राशिएँ अर्थात् कर्क मिथुन, बृष, मेष, मीन और कुम्भ चन्द्रमा के अधिकार में हैं। शेष ग्रहों को दोनों ने अपने अपने अधिकार की राशियों में से एक एक राशि दी। जैसे बुध को सूर्य ने अपने समीप कन्या राशि दी और चन्द्रमा ने मिथुन राशि दी । शुक्र को सर्य ने तुला और चन्द्र ने वृष, मंगल को सूर्य ने वृश्चिक और चन्द्र ने मेष, वृहस्पति को सूर्य ने धनु और चन्द्र ने मीन, तथा शनि को सूर्य ने कुम्भ और चन्द्र ने मकर राशि प्रदान की। इसी कारण मंगल, बुध, गुरू, शुक्र और शनि ये पांच ग्रह दो दो राशियों के स्वामी हुए । विदित हो कि सूर्य और चन्द्रमा ने बुध, शुक्र, मंगल, गुरू और शनि को इस क्रमवार इसलिए स्थान दिया है कि बुध सूर्य से सब से निकट—केवल ३६०,००००० मील दूर है। इसके बाद शुक्र ६७० लाख मील दूर और सब से अधिक दूर शनि है। इस कुदरती दूरी के कारण ही उन्हें क्रमश: दूर की राशियों का प्रभुत्व सौंपा गया है। इसे समझने के लिये देखो चित्र ।

याद रहे कि सूर्यादि ग्रह प्रकृतिस्थ प्रबल प्रभावों के बोधक हैं और राशियें वे साधन हैं जिनके द्वारा ग्रहों का प्रभाव व्यक्त होता है। क्योंकि मंगल अपने प्रभाव को मेष और बृश्चिक राशियों द्वारा विशेष रूप से प्रकट करने में समर्थ होता है इसलिए मंगल को इन दोनों राशियों का स्वामी माना गया है। इसी प्रकार अन्य ग्रह अपनी अपनी राशियों में विशेष फलदायक हैं । यही वास्तव में गृहाधिप अथवा राश्याधिप का प्रयोजन है। ॥ ११-१२ ॥

इति गृहाधिपद्वारम् ॥ १ ॥

अब दो श्लोकों द्वारा आचार्य ग्रहों की उच्च और नीच राशियों का वर्णन करते हैं—
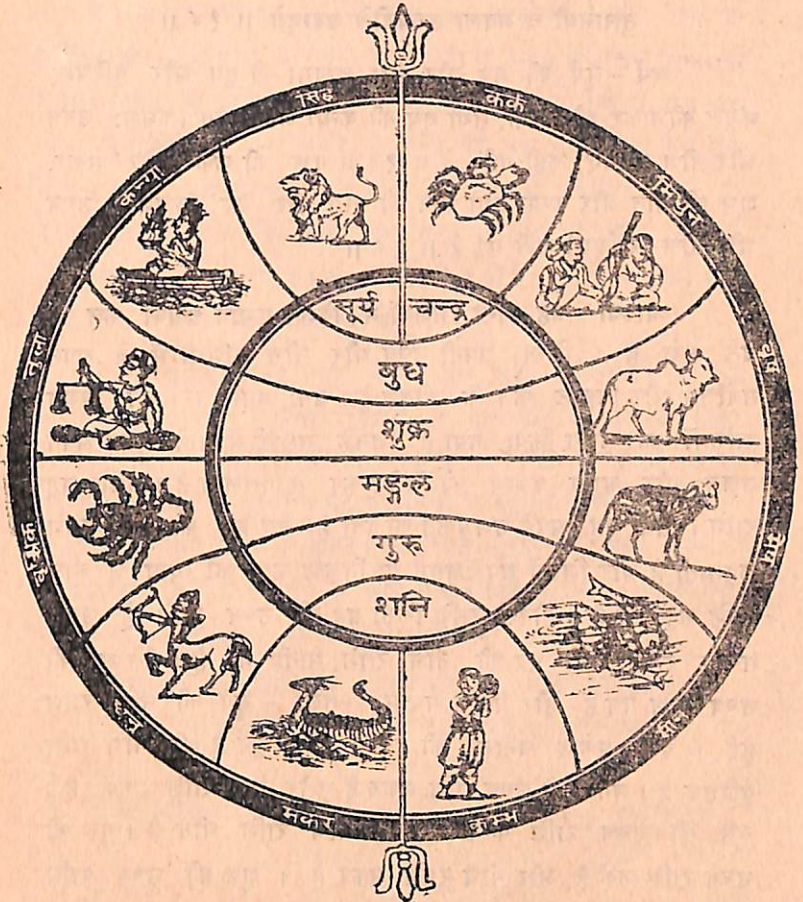
राश्याधिप चित्र

रवेर्मेषतुले प्रोक्ते चन्द्रस्य वृषवृश्चिकौ ।
भौमस्य मृगकर्कौ च कन्यामीनौ बुधस्य च ।। १३ ।।
जीवस्य कर्कमकरौ मीनकन्ये सितस्य च ।
तुलामेषौ च मंदस्य उच्चनीचे उदाहृते ।। १४ ।।

अर्थ—सूर्य की मेष और तुला, चन्द्रमा की वृष और वृश्चिक, मंगल की मकर और कर्क, तथा बुध की कन्या और मीन (क्रमशः उच्च और नीच राशिएं) कही गईं हैं ।। १३ ।। गुरू की कर्क और मकर, शुक्र की मीन और कन्या तथा शनि की तुला और मेष (क्रमशः) उच्च और नीच (राशिएं) कही गई हैं ।। १४ ।।

व्याख्या—ग्रह अपनी राशियों में विशेष प्रभाव अथवा फल के देने वाले हैं । किन्तु अपनी उच्च और नीच राशियों में वे अपने सर्वोत्तम और निकृष्ट फल के द्योतक हैं । अतः यहाँ पर उन विशेष राशियों का वर्णन किया गया है जिनके सम्पर्क में आने से ग्रह अपने उत्तम और अधम प्रभाव को विशेष रूप से दिखलाते हैं । अर्थात् वह राशि जिसमें ग्रह अपने उत्तमफल को देता है उस ग्रह की उच्च राशि कहलाती है और जिसमें अपने अधम या निकृष्ट फल को देता है नीच राशि कहलाती है । जौनसी राशि किसी ग्रह की उच्च राशि है उससे सप्तम राशि उसी ग्रह की नीच राशि मानी गई है । जैसे सूर्य की उच्च राशि मेष है और मेष से सप्तम —तुला — सूर्य की नीच राशि हुई । इसी प्रकार चन्द्रमा की उच्च राशि वृष है और नीच राशि वृश्चिक है । मंगल की उच्च राशि मकर है और नीच राशि कर्क है । बुध की उच्च राशि कन्या है और नीच राशि मीन है । गुरू की उच्च राशि कर्क है और नीच राशि मकर है । शुक्र की उच्च राशि मीन और नीच राशि कन्या है । एवं शनि की उच्च राशि तुला और

नीच राशि मेष है। इसी प्रकार सूर्य मेष राशि के दश अंश तक परमोच्च है और तुला राशि के दश अंश तक परम नीच है। चन्द्रमा वृष राशि के तीन अंश तक परमोच्च है और वृश्चिक के तीन अंश तक परम नीच है। मंगल मकर के अट्ठाईस अंश तक परमोच्च है और कर्क के अट्ठाईस अंश तक परम नीच है। बुध कन्या के पन्द्रह अंश तक परमोच्च है और मीन के पन्द्रह अंश तक परम नीच हैं। गुरू कर्क के पांच अंश तक परमोच्च है और मकर के पांच अंश तक परम नीच है। शुक्र मीन के सत्ताईस अंश तक परमोच्च है और कन्या के सत्ताईस अंश तक परम नीच है। शनि तुला के बीस अंश तक परमोच्च है और मेष के बीस अंश तक परम नीच है। ग्रह परमोच्च अंशों में परमोच्च फल और परम नीच अंशों में परम नीच फल देता है।

स्मरण रहे कि प्रोफैसर वेबर[1], एच. जी. रालिन्सन[2], डाकटर ए. एल. बैशम[3] आदि पाश्चात्य विद्वानों ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया है कि समस्त योरुप ने ग्रहों की उच्चादि शब्दावली भारतीयों से ही ग्रहण की है। अरब लोगों ने यह शब्दावली भारतीयों से ली और इसका अनुवाद सर्वप्रथम लेटिन में हुआ। तत्पश्चात् योरुप की अन्य भाषाओं में इसी संस्कृत शब्द ने विभिन्न रूपों में प्रवेश किया। अतः इसके लिए समस्त योरूप भारतीयों का ऋणी है॥ १३-१४॥

1. History of Indian Literature, पृष्ट२३७.
2. Intercourse between India and the Western World, पृष्ट १७४.
3. The wonder that was India (1954) पृष्ट ४६१.

ग्रहोच्चनीचराश्यंशचक्रम्

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
उच्चराशि	मेष	वृष	मकर	कन्या	कर्क	मीन	तुला
नीचराशि	तुला	वृश्चिक	कर्क	मीन	मकर	कन्या	मेष
परमोच्च परम नीच अंश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०

इति ग्रहोच्चनीच द्वारम् ॥ २ ॥

अब तीसरे द्वार में आचार्य ग्रहों की पारस्परिक मित्रता और शत्रुत्व पर प्रकाश डालते हैं—

> रवीन्दुभौमगुरवो ज्ञशुक्रशनिराहवः।
> स्वस्मिन्मित्राणि चत्वारि परस्मिञ्छत्रवः स्मृताः ॥ १५ ॥
> राहुख्यो : परं वैरं गुरूभार्गवयोरपि ।
> हिमांशबुधयोः वैरं विवस्वन्मन्दयोरपि ॥ १६ ॥
> ज्ञशनी सुहृदौ मित्राण्यर्कचन्द्रकुजाः सदा ।
> पूज्यवर्गौ गुरूस्तौ सैंहिकेयस्य कथ्यते ॥ १७ ॥

अर्थ—सूर्य, चन्द्रमा मंगल और वृहस्पति ये चारों ग्रह आपस में मित्र हैं। और बुध, शुक्र, शनि और राहु ये चारों ग्रह भी परस्पर मित्र हैं। किन्तु दूसरे के दल में ये आपस में शत्रु कहलाते हैं ॥ १५ ॥ राहु और सूर्य, वृहस्पति और शुक्र, चन्द्रमा और बुध, एवं सूर्य और

शनि इन दो दो ग्रहों का आपस में महावैर है ॥ १६ ॥ बुध और शनि आपस में परम मित्र हैं और सूर्य, चन्द्रमा और मंगल भी सदैव आपस में मित्र हैं। वृहस्पति और शुक्र सदा आपस में पूज्यभाव रखते हैं ॥ १७ ॥

व्याख्या—श्लोक १५ में चार चार ग्रहों के दो दलों में मित्रता दिखलाई गई है। यथा पहले दल में सूर्य के अपने ही दल के शेष तीन ग्रह अर्थात् चन्द्रमा, मंगल और गुरू मित्र हैं। चन्द्रमा के मंगल, गुरू और सूर्य मित्र हैं, मंगल के गुरू, सूर्य और चन्द्रमा मित्र हैं, और गुरू के सूर्य, चन्द्र और मंगल मित्र हैं। इसी प्रकार दूसरे दल में भी बुध के शुक्र, शनि और राहु मित्र हैं। शुक्र के शनि, राहु और बुध मित्र हैं, शनि के राहु, बुध और शुक्र मित्र है; तथा राहु के बुध, शुक्र और शनि मित्र हैं। किन्तु पहले दल का प्रत्येक ग्रह दूसरे दल के प्रत्येक ग्रह का शत्रु हैं। यथा सूर्य के बुध. शुक्र, शनि और राहु शत्रु हैं। चन्द्रमा, मंगल और गुरू के भी बुध, शुक्र, शनि राहु शत्रु हैं। इसी प्रकार शनि के भी सूर्य, चन्द्र, मंगल, गुरू शत्रु हैं। यहां आचार्य ने दैवज्ञ काशीनाथ के मत को स्वीकार किया है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने अनुसन्धानों के आधार पर प्रमाणित किया है कि ग्रह-राशि-तारागणादि से प्राप्त किरण-पातनों के भेदों के कारण ही हमारी शारीरिक, मानसिक और जैविकीय क्रियाएँ होती हैं। यह भी सिद्ध ही है कि ग्रह अपने निजी प्रभावों को कम्पन (Vibrations) द्वारा संचरण (Transmit) करते हैं। इसलिए वह ग्रह जो अपना लहरों (Waves) और किरण-पातनों (Radiations) द्वारा दूसरे ग्रह की लहरों और किरण-पातनों में वृद्धि करता है, उस का मित्र कहलाता है। और दूसरे ग्रह के किरन-पातनों में कमा, प्रतिक्रिया या विरोध करने के कारण वह ग्रह उसका शत्रु कहलाता है।

जो ग्रह दूसरे ग्रह के प्रभाव को अत्यधिक उत्तेजित करता है वह उस ग्रह का परम मित्र और जो अत्यधिक विरोध करता है वह उस का परम शत्रु कहलाता है। यही ग्रहों के मित्र, शत्रु, परम मित्र, परम बैरी का प्रयोजन हैं। हमारे ऋषियों ने विज्ञान के इस तथ्य के आधार पर ही ग्रहों की मित्र शत्रु संज्ञा निर्धारित की थी।

ग्रहमैत्रीशत्रुता चक्रम्।

ग्रह	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	रा.
मित्र	चं. मं वृ.	सू. मं .	सू. चं बृ	शु. श. रा.	सू. चं. मं.	बु. श. रा.	बु. शु. रा.	बु. शु. श.
	ब. शु. श. रा.	बु. शु. श. रा.	ब. शु. श. रा.	सू. चं. मं बृ.	बु. शु. श. रा.	सू. चं. मं. वृ.	सू. चं. मं. वृ.	सू. चं. मं. वृ.

स्मरण रहे कि प्रश्न कुण्डली अथवा जन्म वा वर्ष कुण्डली का ठीक फलादेश कहने के लिए ग्रहों के पारस्परिक सम्बन्धों — मैत्री, शत्रुता आदि—का जानना आवश्यक है। कई बार इन सम्बन्धों के कारण ही फलादेश में न्यूनता वा अधिकता हो जाया करती है। ऐसा भी देखा गया है कि ग्रहों की मित्रता वा शत्रुता के कारण ही विपरीत फलादेश भी हो पाया है ॥ १५-१६-१७ ॥

इति ग्रहाणां शत्रुमित्रद्वारम् ॥ ३ ॥

अब पूर्वकथित राहु बाबत विशेष लिखते हैं।

यद् बुधस्य ग्रहस्योच्चं राहोस्तद् गृहमुच्यते ।
यद् बुधस्य गृहं राहोस्तदुच्चं ब्रुवते बुधा : ॥ १८ ॥
कन्या राहुगृहं प्रोक्तं राहूच्चं मिथुनं स्मृतम् ।
राहुनीचं धर्नुवर्णादिकं शनिवदस्य च ॥ १९ ॥
राहुर्दुष्ट : परं किंचिदुदास्ते मित्रसद्मनि ।
कन्यामिथुनयो : किञ्चिद्विधत्ते शुभमप्ययम् ॥ २० ॥

अर्थ—जो बुधग्रह का उच्च (=कन्या) है वह राहु का गृह कहलाता है और जो बुध का (सामान्य) गृह (=मिथुन) है, वह राहु का उच्च है, ऐसा पंडित लोग कहते हैं ॥ १८ ॥ कन्या राहु का गृह कहा है और मिथुन राहु का उच्च कहा है, धनु राशि राहु का नीच है और राहु का वर्ण (स्वरूप) आदि शनि के समान है ॥ १९ ॥ राहु दुष्ट ग्रह है पर मित्र के गृह में अर्थात् बुध और शनि के गृह में उदासीन रहता है। भाव यह कि राहु मित्र के गृह में पाप फलदायक नहीं है। तथा कन्या और मिथुन राशियों में राहु किंचित् शुभ फल करता है। भाव यह कि स्वक्षेत्री और स्वोच्च होने से शुभ फलदायक ही है ॥ २० ॥

व्याख्या—श्लोक ११ से १४ पर्यन्त सूर्यादि सप्त ग्रहों के स्वामित्व और उच्च नीच पर प्रकाश डाला गया है। इन तीन श्लोकों द्वारा राहु के स्वोच्च, नीच और स्वगृह को स्पष्ट किया गया है। श्लोक १८ में केवल इतना कहा गया है कि बुध का जो सामान्य गृह है वह राहु का उच्च क्षेत्र है और जो बुध का उच्च गृह है वह राहु का स्वगृह है। श्लोक १९ में इसका भाव स्पष्ट करते हुए लिखा है कि राहु मिथुन राशि का उच्च और कन्या राशि का स्वक्षेत्री है। मिथुन राशि का उच्च होने के कारण उससे सप्तम राशि अर्थात् धनु राशि का राहु नीच सिद्ध ही है। आगे चलकर श्लोक ४२ में

बताया गया है कि शनि राहु पाप ग्रह हैं। शनि का वर्ण काला है और वह सूर्य का परम शत्रु है। राहु भी तमोग्रह अथवा विम्बहीन और सूर्यादि का मर्दन करने के कारण प्रकृति, वर्ण आदि में शनि के सदृश है। इसी कारण आचार्य ने राहु के वर्णादि को शनि के समान दिखलाया है। सम्भवत: जैमिनी ऋषि ने इसी कारण कुम्भ राशि को राहु का क्षेत्र माना है। बुध शुभग्रह है और राहु का मित्र है। नेक और सदाचारी मित्र के संसर्ग से प्राय: दुष्ट भी अपने पाप स्वभाव को छोड़कर शुभ मार्ग पर चलता है, यह प्राय: संसार में देखा ही जाता है। अत: राहु भी बुध के उच्च और सामान्य गृह में अपने पाप स्वभाव को भूलकर शुभ फल प्रदान करता है। मतान्तर यह भी है कि राहु मेष, वृष, कर्क लग्नों में समस्त विपत्तियों से इस प्रकार रक्षा करता है जिस प्रकार अपराधी पर प्रसन्न हुआ राजा ।। १८-१९-२० ।।

इति राहु गृहोच्चनीचद्वारम् ।। ४ ।।

आगे पंचम द्वार में केतु का स्थानादि वर्णन करते हैं --

राहुच्छाया स्मृत: केतुर्यत्र राशौ भवेदयम् ।
तस्मात्सप्तमके केतु : राहु: स्याद्यत्र चांशके ।।२१ ।।
तस्मादंशे सप्तमे स्यात्केतोरंशो नवांशक: ।
त्रिशांशो भागशब्देन पारम्पर्यमिदं गुरो : ।। २२ ।।

अर्थ—केतु को राहु की छाया कहा गया है, अत: राहु जिस राशि में जितने अंश पर रहता है उस से सप्तम राशि पर उतने ही अंश पर केतु रहता है। यहां पर अंश शब्द से नवमांश तथा भाग शब्द से त्रिशांश का ग्रहण है, ऐसा परम्परा से गुरू द्वारा जाना गया है ।। २१-२२ ।।

व्याख्या—प्राचीन ग्रन्थों में राहु और केतु दोनों को छाया

ग्रह कहा गया है। ये दोनों किस की छाया हैं, इस का अनुमान लगाना कठिन है। सम्भव है ये पृथ्वी की ही छाया हों। भारतीय मिथिहास में राहु और केतु एक ही दैत्य अथवा सर्प के शिर और पूंछ हैं। कईयों के मतानुसार ये आरोही वा अवरोही पात हैं। कई विद्वानों के मत में ये पृथ्वी और चन्द्रमा की कक्षाओं की सन्धियों के कल्पित बिन्दुमात्र ही हैं। भारतीय ज्योतिष शास्त्र में इन का महत्त्वपूर्ण स्थान है और इन दोनों को सूर्यादि सप्तग्रहों से मिलाने के कारण ही भारतीय नवग्रह की प्रणाली का आविर्भाव होता है। ये दोनों सदा वक्रगति हैं और एक राशि में डेढ वर्ष तक वास करते हैं। अथवा द्वादश राशि-चक्र के गिर्द ये अठारह वर्ष में एक बार परिभ्रमण करते हैं। राहु और केतु एक दूसरे से १८० अंश की दूरी पर रहते हैं। इसलिए आचार्य ने यहां ठीक ही कहा है कि ये एक दूसरे से सप्तम स्थान, अंश आदि पर रहते हैं। नवांश और त्रिशांशों पर आगे चलकर विचार किया जावेगा ॥ २१-२२ ॥

इति केतुस्थितिद्वारम् ॥ ५ ॥

अब मूक प्रश्नोत्तर के लिये ग्रहों की जलचरादि संज्ञा कहते हैं —

भार्गवेन्दू जलचरौ ज्ञजीवौ ग्रामचारिणौ ।
राहुक्षितिजमन्दार्का ब्रुवतेऽरण्यचारिण : ॥२३ ॥

अर्थ—शुक्र और चन्द्रमा जलचारी हैं, बुध और गुरु ग्रामचारी हैं। राहु, भौम, शनि और सूर्य बनचारी हैं, ऐसा पंडित जन कहते हैं ॥ २३ ॥

व्याख्या—इस श्लोक में ग्रहों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है—जलचारी, ग्रामचारी, और वनचारी। दो ग्रह—शुक्र और चन्द्र—जलचारी हैं, अर्थात् इनका सम्बन्ध बावड़ी, तालाब, जलाशय,

सरोवर, नहर, समुद्र-तीर और सजल स्थानों अथवा जलीय वा तरल पदार्थों से है। बुध आर बृहस्पति, दो ग्रह, ग्रामचारी हैं। अर्थात् इन का सम्बन्ध ग्राम, नगर, रमणीक स्थानों, विनोदशाला, क्रीड़ा-भवन, कला-भवन, नाट्यगोष्ठी आदि से है। शेष सूर्य, मंगल, शनि, राहु का सम्बन्ध वन, पर्वत, क्षेत्र, खनिज भूमि अथवा खनिज पदार्थों से है। इस का प्रयोजन यह है कि यदि प्रश्न समय शुक्र या चन्द्र वलवान् होकर लग्न में युक्त हो अथवा लग्न को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो प्रश्न कर्त्ता का सम्बन्ध जलीय पदार्थों अथवा जल सम्बन्धी है। अथवा यह भी कह सकते हैं कि प्रश्न कर्त्ता जल-चारी है। इसी प्रकार शेष ग्रहों की बाबत जानना चाहिए। पर स्मरण रहे कि यदि जीव प्रश्न हो और शुक्र लग्नेश होकर लग्नयुत् अथवा लग्न को देखे तो प्रश्न कर्त्ता यदि पुरुष है तो उसका प्रश्न स्त्री बाबत है और यदि प्रश्न कर्त्ता स्त्री हो तो उस का प्रश्न पति अथवा पुरुष सम्बन्धी है। कारण यह है कि शुक्र स्त्री-कारक है और स्त्री की कुण्डलीं में काम-कारक (पुरुष) है ॥ २३ ॥

अगले श्लोक में ग्रहों द्वारा काल-ज्ञान पर प्रकाश डालते हैं—

प्रभातमिन्दुजगुरू मध्याह्नं रविभूमिजौ ।
अपराह्नं भार्गवेन्दू सन्ध्यां मन्दभुजंगमौ ॥ २४ ॥

अर्थ—बुध और बृहस्पति प्रभात समय, रवि और मंगल दोपहर के समय, शुक्र और चन्द्रमा तीसरे पहर में और शनि तथा राहु सन्ध्या काल में (वली होते हैं) ॥ २४ ॥

व्याख्या—इस श्लोक द्वारा आचार्य ने ग्रहों के काल का निर्णय किया है। प्रश्न सम्बन्धी विषय पर इस की सहायता से यह जाना

जाता है कि अमुक वस्तु किस समय खोई गई थी, अमुक काम किस समय बनेगा, अमुक पुरुष किस समय मिलेगा, अमुक समाचार, तार, पत्र, टेलीफोन आदि किस समप मिलेगा, इत्यादि। उदाहरणार्थ प्रश्नकाल समय यदि बुध या गुरू बलवान् होकर लग्न को देखे या लग्न युक्त हो तो प्रातः काल कहना, रवि अथवा मंगल इसी अवस्था में हो तो दोपहर, शुक्र और चन्द्र से तीसरा पहर और शनि तथा राहु से सन्ध्या काल जानना ॥ २४ ॥

नष्टादि वस्तु किस स्थान में हैं, यह जानने के लिए ग्रहों की ऊर्ध्वसम दृष्टि कहते हैं—

तिर्यग्दृशौ बुधसितौ भौमार्कौ व्योमदर्शिनौ ।

जीवेन्दू समदृष्टी च शनिराहू त्वधोदृशौ ॥ २५ ॥

अर्थ—बुध और शुक्र तिरछी दृष्टि (कटाक्ष) वाले हैं, मंगल और सूर्य आकाश की ओर देखने वाले अर्थात् ऊर्ध्व दृष्टि वाले है, वृहस्पति और चन्द्रमा समदृष्टि अर्थात् सामने देखने वाले, तथा शनि और राहु नीचे की ओर देखने वाले हैं ॥ २५ ॥

व्याख्या—मनोविज्ञान शास्त्र की सहायता के बिना केबल प्रश्नकर्त्ता की दृष्टिमात्र से ही नष्ट वस्तु के स्थानादि का बोध कराया गया है। प्रश्न-काल समय यदि प्रश्न कर्त्ता तिरछी दृष्टि मे देखे तो समझ लेना चाहिए कि बुध अथवा शुक्र का प्रभाव हो रहा है और इसी कारण नष्ट वस्तु दीवार या खोदे हुए स्थान आदि में है। ऊपर की ओर दृष्टि हो तो आकाश में अर्थात् घर के किसी ऊंचे स्थान, आला, छत आदि में, समदृष्टि हो तो समान भूमि में, और नीचे की ओर देखे तो भूमि में गढ़ी हुई है। इसी प्रकार यदि प्रश्नकालीन लग्न में सूर्य या मंगल हो अथवा इन में से कोई बलवान् हो कर लग्न को देखे तो समझ लेना चाहिए कि नष्ट बस्तु घर के क़िसी ऊंचे स्थान, चौबारा, आला,

अलमारी का खाना, छत आदि में है। यदि बली राहु अथवा शनि लग्नवर्ती हो अथवा लग्न को देखे तो नष्ट वस्तु भूमि में गढ़ी हुई, फर्श के नीचे अथवा किसी कोने में है। इसी प्रकार शेष ग्रहों बाबत जानना चाहिए ।। ग्रहों की दृष्टि पर आचार्य आगे चलकर श्लोक ६२ में प्रकाश डालेंगे ।। २५ ।।

रोगादि प्रश्न में किस धातु का प्रकोप है अथवा अमुक पुरुष की प्रकृति क्या है, यह जानने के लिए ग्रहों की धातु (Humour) पर विचार किया जाता है—

पित्तं प्रभाकरक्ष्माजौ श्लेष्मा भार्गवशीतगू ।
ज्ञगुरु समधातू च पवनौ राहुमन्दगौ ।। २६ ।।

अर्थ—सूर्य और मंगल पित्तप्रकृति वाले हैं, शुक्र और चन्द्रमा कफ अथवा श्लेष्म (रेशा आदि) प्रकृति वाले हैं । बध और वृहस्पति सम धातु अर्थात् बात, पित्त, कफ तीनों धातु समान मिले वाले हैं, तथा राहु और शनि वात [वायु] प्रकृति वाले हैं ।। २६ ।।

व्याख्या—आयुर्वेद पद्धति के अनुसार पित्त (Bile), वात (Wind), और कफ (Phlegm) ये तीन धातुएँ या प्रकृतिएँ (Humours) हैं जिन के प्रकोप के कारण रोगों की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार मनुष्यों की प्रकृति भी भिन्न है और इन्हीं धातुओं की प्रवलता के कारण मनुष्य भी पित्तप्रकृति अथवा बात या श्लेष्म प्रकृति वाले हैं। किन्तु यहां तीनों धातुओं का मिश्रण होता है तो मनुष्य धातुसम होने के कारण समान प्रकृति के होते हैं।

डाक्टर ए. बी. कीथ साहेब का कथन है कि 'इस बात को अवश्य नोट कर लेना चाहिए कि धातुओं का सिद्धान्त जिनकी अव्यवस्था या क्षोभ के कारण ही रोगों की उत्पत्ति होती है भारतीय और यूनानी

चिकित्सा-पद्धतियों द्वारा मान्य है।'* किन्तु डाक्टर पी. सी. रे इस विचार को रद्द करता हुआ लिखता है कि "हिन्दू प्रणाली का आधार तीन—वात, पित्त और कफ-धातुओं पर है, किन्तु यूनानी प्रणाली का आधार चार—रक्त, पित्त, जलीय, कफ–धातुओं पर है। यह दोनों में प्रधान अन्तर का द्योतक है।"$ डाक्टर रे आगे चलकर लिखता है कि "चाहे कुछ भी हो धातु द्वारा रोग-निदान कम-से-कम बहुत दूर पूर्व ऋग्वेदकाल तक का ग्रहण किया जा सकता है (ऋग्वेद १.३४.५)। अथर्ववेद, जिसे आयुर्वेद का पिता समझा जाता है, में भी हमें कुदरती तौर पर ऐसे बहुत से प्रमाण उपलब्ध होते हैं जो धातुओं के प्रकोप द्वारा रोगों की उत्पत्ति के सूचक हैं। इन में से **'बातकृत्'** आदि ऐसे पद मिलते हैं जिसका अर्थ है 'वात (वायु) के प्रकोप के कारण उत्पन्न हुआ रोग'.. ... .."$

चिकित्साशास्त्र जाने बिना ही ग्रहों द्वारा रोगनिदान, रोग का कारण, मनुष्य की प्रधान प्रकृति आदि जानने के लिए इस श्लोक में आचार्य ने ग्रहों की धातु पर बिचार किया है। जन्मकालीन लग्न अथवा प्रश्नकालीन लग्न के साथ जिस ग्रह का सम्बन्ध हो उस ग्रह की प्रकृति के अनुसार ही जातक अथवा प्रश्नकर्त्ता की प्रकृति होती है। यदि एक से अधिक ग्रहों का सम्बन्ध हो तो उन में से वलिष्ठ ग्रह की प्रकृति कहनी चाहिए। इसी प्रकार जन्म-काल अथवा प्रश्न-काल में रोगकारक ग्रह की जो धातु हो उस के प्रकोप से रोग की उत्पत्ति होती है और यदि अधिक ग्रह रोगकारक हों तो उन में से वलिष्ठ अथवा सारे धातुओं के प्रकोप से रोगोत्पत्ति होती है। इस में भी विशेषता यह है कि यदि शुभग्रह रोगकारक हो तो शुभ कर्मों द्वारा रोगों की उत्पात्ति कहना,

---

* हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ ५१३

$ हिस्ट्री आफ हिन्दु कैमिस्ट्री, पृष्ठ ४७ (भूमिका)

$ हिस्ट्री आफ हिन्दु कैमिस्ट्री, पृष्ठ ३५ (भूमिका)

और यदि पाप ग्रह रोग कारक हो तो पाप कर्मों द्वारा रोगोत्पत्ति कहना चाहिए। यदि शुभ और पाप दोनों ग्रह रोगकारक हों तो शुभ और पाप कर्मों द्वारा रोग की उत्पत्ति कहनी चाहिए ॥ २६ ॥

प्रश्न कर्त्ता किस रस का प्रिय है, यह जानने के लिए ग्रहों के रस कहते हैं—

कुजार्कौ कटुकौ जीवो मधुरस्तुवरो बुधः ।
क्षाराम्लौ चन्द्रभृगुजौ तीक्ष्णौ सर्पार्कनन्दनौ ॥ २७ ॥

अर्थ—सूर्य और मंगल कटुक [कड़वा] रस के, वृहस्पति मधुर (मीठा) रस का, बुध तुवर (कषाय, कसैले) रस का, चन्द्रमा क्षार (लवण) रस का, शुक्र अम्ल (खट्टे) रस का तथा शनि और राहु तीक्ष्ण (Astringent) रस के प्रिय हैं ॥ २७ ॥

व्याख्या—वैशेषिक शास्त्र के अनुसार रस छः प्रकार के हैं— मधुर, खट्टा, लवण, कड़वा, कसैला और तीक्ष्ण। शुभ ग्रह वृहस्पति, चन्द्रमा, बुध और शुक्र क्रमशः मीठे, लवण, कसैले और खट्टे रस के पति हैं अर्थात् एक एक ग्रह एक एक रस का स्वामी है। किन्तु पापी ग्रह सूर्य और मंगल-दोनों-कड़वे रस के और शनि और राहु-दोनों पापी ग्रह भी-तीक्ष्ण रस के स्वामी हैं। इस का प्रयोजन यह है कि जन्म कुण्डली तथा प्रश्नकुण्डली में जो ग्रह बलवान हो कर लग्न से सम्बन्ध रखता हो, उस ग्रह का जो रस है उस के अनुसार ही जातक अथवा प्रश्न कर्त्ता की रसप्रियता कहना। गर्भिणी के दोहद आदि के रस का अनुमान भी इसी रस व्यवस्था से लगाया जाता है ॥ २७ ॥

अब हृतनष्टमुष्टिगत या चिन्तित वस्तु किस वर्ग में है, इस बात का निश्चय करने के लिए धातु, मूल, जीव कोटि को कहते हैं—

मन्देंदूरगभौमाः स्युर्धातुः सवितृभार्गवौ ।
मूलं, जीवश्च सौम्यश्च जीवं प्राहुर्महाधियः ॥ २८ ॥

अर्थ—शनि, चन्द्रमा, राहु और मंगल धातु संज्ञक हैं, सूर्य और शुक्र मूल संज्ञक हैं और बुध तथा गुरु की जीव संज्ञा है, ऐसा महान् बुद्धिमानों ने कहा है ॥२८॥

व्याख्या—किसी की वस्तु का हरण हुआ हो, या कोई वस्तु नष्ट हो गई हो, या मुट्ठी में कोई वस्तु ढक रक्खी हो, या किसी बस्तु की मन मे चिन्ता हो तो वह जीवकोटि, मूलकोटि, या धातुकोटि में से किस वर्ग में है, इसका निश्चय यहां किया गया है। **षट्पंचाशिका** (१. ७), **प्रश्नज्ञान प्रदीप** (१.६४), **सर्वार्थ चिन्तामणि** (१—५४) आदि अनेक ग्रंथों में भी ग्रहों की यही धातु, मूल, जीव आदि संज्ञा दी गई है। इस श्लोक में पदार्थ समूह को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। धातुवर्ग के अन्तर्गत सोना से लेकर मिट्टी तक, मूलवर्ग में वृक्ष से लेकर तृण पर्यन्त, जीववर्ग में मनुष्य से लेकर कीट पतंग तक शामिल किये गए हैं। धातु भी दो प्रकार के होते हैं—धाम्य और अधाम्य। धाम्य धातुओं में सुवर्णादि तैजस पदार्थ और अधाम्य धातुओं में मृत्तिका, पत्थर आदि अतैजस पदार्थ शामिल हैं। यदि धातुग्रह—शनि, चन्द्रमा, राहु, मंगल—का लग्न से सबंध हो तो प्रश्न धातु सम्बन्धी है। किन्तु धाम्य और अधाम्य धातु का निर्णय नवांशों द्वारा किया जाता है। ग्रह पाप ग्रह के नवांश में हो तो धाम्य, और शुभ ग्रह के नवांश में हो तो अधाम्य धातु संबन्धी प्रश्न है। आगे ३७ वें श्लोक में धातु संबन्धी विशेष विचार किया गया है। मूलवर्ग के दो भाग हैं—जलचर और स्थलचर। ग्रह यदि जलचर राशि के नवांश में हो तो जल सम्बन्धी, और स्थलचरराशि के नवांश में हो तो स्थल सम्बन्धी 'मूल' जानना। कर्क, तुला, वृश्चिक, मकर, कुम्भ और मीन जल राशिएं हैं और शेष शुष्क अथवा स्थल राशिएँ हैं। जीववर्ग भी तीन प्रकार का है—द्विपद, चतुष्पद और सरीसृप। इस पर अगले श्लोक में विचार किया जावेगा ॥२८॥

अब जीववर्ग में से द्विपद, चतुष्पद और सरीसृप का निश्चय करते हैं--

द्विपदौ भार्गवगुरू भौमार्कौ च चतुष्पदौ ।
पक्षिणौ बुधसौरी च चन्द्रराहू सरीसृपौ ॥२९॥

अर्थ--शुक्र और वृहस्पति द्विपद संज्ञक हैं, मंगल और सूर्य चतुष्पद संज्ञक हैं, बुध और शनि पक्षी संज्ञक है, तथा चन्द्रमा और राहु सरीसृप संज्ञक अर्थात् सिसर कर चलने वाले हैं ॥२९।

व्याख्या –यदि प्रश्न जीवसंज्ञक सिद्ध ो तो कौन जीव है, इस का निश्चय करने के लिए जीववर्ग को द्विपद, चतुष्पदादि भागों में वाँटा गया है । शुक्र और गुरु द्विपद—दो पैरों वाले-ग्रह हैं । द्विपद के अन्तर्गत देवता, मनुष्यादि शामिल हैं । मंगल और सूर्य चतुष्पद—चार पैरों वाले-ग्रह हैं और इनमें मेढा, बैल शेर, बिल्ली, कुत्ता आदि पशुओं की गणना की जाती है । चन्द्र और राहु छाती के बल से ससर कर चलने वाले—सरीसृप (Reptile)—ग्रह हैं । इन में सर्प, कीट, किरली आदि शामिल हैं । प्रश्नकाल में यदि बली ग्रह लग्न में युक्त हो अथवा लग्न को देखे तो द्विपदादि ग्रहों की सहायता से जावचिन्ता प्रकार का अनुमान लाया जाता है । चुराया गया जीव द्विपद, चतुष्पद, पक्षी संज्ञक या कीटसंज्ञक है तथा दुःखदायक अथवा मृत्यु का कारक (Agency) सारीसृप, पशुजाति, पक्षीगण या मनुष्यादि जाति है, इन सब का निश्चय इस श्लोक की सहायता से किया जाता है ॥२९॥

पूर्वकथितानुसार द्विपद अथवा मनुष्यसंज्ञा सिद्ध होने पर उसकी कौन सी जाति है, इसका निश्चय करने के लिए ग्रहों की ब्राह्मणादि जाति कहते हैं:—

विप्रौ शुक्रगुरू क्षत्रौ कुजार्कौ शूद्र इन्दुजः ।
इन्दु वैश्यः स्मृतौ म्लेच्छौ सैंहिकेयशनैश्चरौ ॥३०॥

अर्थ—शुक्र और बृहस्पति ब्राह्मण हैं, मंगल और सूर्य क्षत्रिय हैं, बुध शूद्र है, चन्द्रमा वैश्य है, राहु और शनि म्लेच्छ या चाँडालादि कहे गए हैं ॥ ३० ॥

व्याख्या—यहां पर आचार्य ने चातुर्वर्ण व्यवस्था में चाण्डालादि सम्मिलित कर के पाँच प्रकार का जाति भेद माना है। प्रश्न काल में जो ग्रह बलवान् होकर लग्न से सम्बन्ध करे उस ग्रह की जो जाति है वह जाति प्रश्नसम्बन्धी कहना। इस श्लोक की सहायता से दैवज्ञों द्वारा शत्रु और मित्र, अधिकारी और जनवर्ग, व्यापार सम्बन्धी भाई वालों और चोर आदि की जाति का निर्णय किया जाता है ॥ ३० ॥

अब मनुष्यों अथवा पदार्थों का आकारादि जानने के लिए ग्रहों के आकार पर प्रकाश डालते हैं—

स्थूल इन्दुः सितः षण्ढश्चतुरस्रौ कुजोष्णगू ।
वर्तुलौ सौम्यधिषणौ दीर्घौ शनिभुजङ्गमौ ॥ ३१ ॥

अर्थ— चन्द्रमा मोटा, शुक्र दुर्बल, मंगल और सूर्य वर्गाकार अर्थात् न बहुत ऊंचे और न छोटे अथवा समान (मध्यम) आकार वाले, बुध और बृहस्पति गोलाकार, तथा शनि और राहु लंबे हैं ॥ ३१ ॥

व्याख्या—यहां शुक्र को षंढ अथवा निर्वीर्य लिखा है। शुक्र का तो अर्थ ही वीर्य है, अतः पाठकों को भ्रम न पड़े इस भाव से हम ने इस का अर्थ दुर्बल किया है। शुक्र स्त्री कारक होने से भी दुर्बलता का सचक है। पर स्मरण रहे कि शुक्र यहां शरीर की दुर्बलता का सूचक है, वहां कान्ति और आकर्षणशक्ति का भी द्योतक है। प्रश्नलग्न अथवा जन्मलग्न में जो ग्रह वलिष्ठ हो कर लग्न से सम्बन्ध करे उसी के अनुकूल मनुष्य का आकार कहना चाहिए। प्रश्न शास्त्र में इस की सहायता से चोरी की वस्तु के आकार, परिमाण, तथा स्थूल, सूक्ष्म, कान्तियुक्त, गोलाकार वा वर्गाकार आदि का पता लगाया जा सकता है ॥ ३१ ॥

अब मनुष्य अथवा पदार्थों के रंग जानने के लिए ग्रहों के वर्णों को कहते हैं—

रक्तवर्णः कुजः प्रोक्तो धिषणः कनकद्युतिः ।
शुकपिच्छसमः सौम्यो गौरकान्तिरथोष्णगुः ॥ ३२ ॥
मन्दारार्कस्य पुष्पेण समद्युतिरनुष्णगुः ।
कविरत्यंतधवलः फणी कृष्णः शनिस्तथा ॥ ३३ ॥

अर्थ—मंगल का रक्त (लाल) वर्ण, वृहस्पति स्वर्ण के सदृश अर्थात् पीत वर्ण, बुध तोते के परों के समान अर्थात् हरा, सूर्य गोरी कान्ति वाला ॥ ३२ ॥

चन्द्रमो पारिजात [कल्पवृक्ष] अथवा आक के फूल समान, शुक्र अति धवल [सफेद], राहु और शनि काले वर्ण के हैं ॥३३॥

व्याख्या—आकाश-मंडल पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि ग्रहों के रंगों में भिन्नता है। ये ग्रह इन भिन्न भिन्न रंगों का उत्सर्ग अथवा विमोचन करते रहते हैं। ये सात रंग ग्रहों के अपने नहीं हैं किन्तु सूर्य से लिये गये हैं। इसी कारण संस्कृत में सूर्य को **सप्तरश्मि** 'सात किरणों (रंगों) वाला' भी कहा गया है। इन रंगों का मनोविज्ञान-शास्त्र की दृष्टि में जो महत्व है, उन पर हम आगे चल कर विचार करेंगे। यहां केवल इतना कहना पर्य्याप्त होगा कि इन विभिन्न रंगों की सहायता से सूतिका द्वारा ओढ़े गए वस्त्रों के रंग, नवजात शिशु का रंग, बलबों और बत्तिओं के रंग और हृत नष्टादि वस्तुओं तथा चोरों आदि के वर्णों का ज्ञान होता है। जो ग्रह वली हो कर लग्न से सम्बन्ध करे उसी के अनुकूल जातक अथवा प्रश्न कर्त्ता का रंग कहना चाहिए ॥ ३२-३३ ॥

अब मनुष्य की आजीविका अथवा विशेष अधिकारों को जानने के लिए ग्रहों के अधिकारों को कहते हैं—

अवनीशो दिनमणिस्तपस्वी रोहिणीप्रियः ।
स्वर्णकारः क्षितेः पुत्रो ब्राह्मणो रोहिणीभवः ॥ ३४ ॥
वणिग्गुरुः कविर्वैश्यो वृषलः सूर्यनन्दनः ।
सैंहिकेयो निषादश्च सर्वकार्येषु संमतः ॥ ३५ ॥

अर्थ—सूर्य राजा है, चन्द्रमा तपस्वी है, मंगल सुनार हैं, बुध ब्राह्मण है ॥३४॥ वृहस्पति बनिया है, शुक्र वैश्य अथवा बहुत धनी है, शनि दास [नौकर] है, राहु चांडाल [हिंसक] है—यह विचार सब कार्यों में मान्य है ॥३५॥

व्याख्या—ये दो श्लोक आजीविका का बोध कराने में समर्थ हैं। सूर्य को यहां राजा कहा गया है, जिसका भाव यह है कि आजीविका राजा द्वारा हो अथवा प्रश्नकर्त्ता कोई उच्च राज्याधिकारी, हाकम, अफसर, शासक, प्रबन्धकर्त्ता, अध्यक्ष, किसी संस्था का उच्चाधिकारी, राजनीतिक नेता किंवा किसी-न-किसी तरह राजदर्बार या हकूमत से सम्बन्धित है। चन्द्रमा से तपस्या, उपकार, जप, तप, सहृदयता, दया, होम, यज्ञ, परोपकारी कृत्यों आदि का अनुमान लगाया जाता है। मंगल केवल सुनार ही नहीं किन्तु धातु रत्नादि क्रय विक्रय का प्रतीक है। वे कार्य जिनका सम्बन्ध अग्नि से अथवा शस्त्रों से है मंगल के अधीन हैं। जैसे, कारखाने, ईंटें बनाने वाले भट्ठे, हलवाई, सिपाही, फौजी, होटल वाले अथवा सराफ आदि। बुध को ब्राह्मण इसलिए कहा है कि बुध वाणी, लिखनकला, पठन पाठन, विज्ञान, कथा वार्ता कर्मकाण्ड, व्याख्यान, धर्मोपदेश, कीर्त्तन शास्त्रादि का कारक है और ब्राह्मणों की वृत्ति प्रायः बुधसम्बन्धी कार्यों से है। वृहस्पति से बनिया का बोध कराने का भाव यह है कि क्रय विक्रय, व्यापार, लेन देन, शेयर मार्कट, कर विभाग, बक आदि से सम्बन्ध। शुक्र का सम्बन्ध विशेष धन द्वारा धनोपार्जन, व्याज, लेन देन, निधि, खज़ाने, बैंक, पूंजीपति आदि से

है। शनि का सम्बन्ध नौकरी, दासकर्म, समाज सेवा, खेती वाड़ी, श्रम-जीवन से है। राहु का सम्बन्ध हिंसावृत्ति, पशुवध, चोरी, जुआ, कसाई वृत्ति, बूचड़ों, नाईवृत्ति चीरफाड़ आदि से है ॥३४–३५॥

सोना चांदी आदि धातुओं में से कौनसी धातु सम्बन्धी प्रश्न है, इसका निर्णय करने के लिये विशेष कहते हैं—

शुक्र चंद्रे भवेद्रौप्यं बुधे स्वर्णमुदाहृतम् ।
गुरौ रत्नयुतं हेम सूर्ये मौक्तिकमुच्यते ॥३६॥
भौमे त्रपु शनौ लोहं राहावस्थीनि कीर्तयेत् ।
धातोर्विनिश्चये ज्ञाते विशेषोऽस्मादुदाहृतः ॥३७॥

अर्थ—शुक्र और चन्द्र होने पर चांदी, बुध हो तो सोना कहा गया है। वृहस्पति हो तो रत्न से जड़ा हुआ सोना, सूर्य हो तो मोती कहा गया है ॥३६॥ मंगल हो तो सीसा, शनि हो तो लोहा, राहु हो तो हड्डी आदि कहना चाहिये। धातु के निश्चित ज्ञान होने पर इस (कथन) से विशेष (धातुज्ञान) कहा गया है ॥३७॥

व्याख्या—श्लोक २८ में धातु सम्बन्धी विचार किया जा चुका है। इन दो श्लोकों में बताया गया है कि शुक्र या चन्द्रमा यदि बलसहित लग्न में युक्त हों अथवा लग्न को देखें तो धातुसम्बधी प्रश्न में प्रश्न-कर्त्ता के मन में चान्दी, रुपया आदि की चिन्ता है। इसी प्रकार बुध का यदि लग्न से युति या दृष्टि सम्बन्ध हो तो सोने की चिन्ता, गुरु हो तो जड़ाऊ गहने अर्थात् वह भूषण जिसमें रत्नादि जड़े हों, की चिन्ता है। सूर्य हो तो मोती (कइयों के मत से मोतियों से जड़ा भूषण), मंगल हो तो सीसा (कइयों के मत से लाल रत्न), शनि हो तो लोहा, पत्थर आदि, राहु हो तो हाथी, दांत अस्थियों के बने वदार्थ कहे। **प्रश्नवैष्णवशास्त्र** (१२–२.३), **प्रश्नचण्डेश्वर** (५–१,) **प्रश्नभूषण**, **प्रश्नशिरोमणि** आदि ग्रन्थों में भी ऐसा ही लिखा है। श्लोक २८ में

आचार्य ने लिखा है कि यदि शुक्र लग्न को देखे या लग्न में स्थित हो तो मूलचिन्ता, तथा बुध और गुरु ऐसा करें तो जीवचिन्ता कहें। इस से पाठकों में भ्रम पड़ने की सम्भावना है इसलिए धातु का निर्णय करने के लिए कहते हैं। श्रीवराहमिहिरात्मज दैवज्ञ पृथुयशा ने षट्पंचाशिका के सप्तम अध्याय के तेरहवें श्लोक में लिखा है कि '**अंशकाज्ज्ञायते द्रव्यम्**' अर्थात् नवांश से धातु-मूल-जीवादि का निश्चय किया जाता है। इसके लिए उन्होंने प्रथमाध्याय के सातवें श्लोक में कहा है कि "**धातुं मूलं जीवमित्योजराशौ युग्मे विद्यादेतदेव प्रतीपम्**' अर्थात् यदि प्रश्न लग्न में विषमराशि [मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु, कुम्भ] हो तो उसका पहला नवांश धातु, दूसरा मूल, तीसरा जीव, चौथा धातु, पांचवां मूल, छटा जीव, सातवां धातु, आठवाँ मूल और नवमां जीव है। समराशिलग्न [वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन] में उलटा गिनना अर्थात् जीव, मूल, धातु क्रम से। भाव यह कि समराशि का पहला नवांश जीव, दूसरा मूल, तीसरा धातु, चौथा जीव, पांचवां मूल, छटा धातु, सातवां जीव, आठवां मूल, नवमां धातु है। राशि के नवमें भाग लो नवांश कहते हैं। एक राशि में तीस अंश होते हैं तो प्रत्येक नवांश तीन अंश और बीस कला का होगा। पहले नवांश का मान शून्यांश से ३ अंश २० कला, दूसरे नवांश का ३—२० से ६—४० तक, तीसरे का ६—४० से १० अंश तक, चौथे का १० से १३—२० तक, पांचवें का १३—२० से १६—४० तक, छटे का १६–४० से २० अंश तक, सातवें का २० से २३–२० तक, आठवें का २३–२० से २६–४० तक, और नवमें नवांश का मान २६–४० से ३० अंश तक होता है। उदाहरणार्थ किसी ने मेष लग्न के बारहवें अंश में प्रश्न किया तो मेषलग्न विषम होने के कारण क्रमशः धातु, मूल, जीव गिनने से चौथे नवांश में आने से धातु सम्बन्धी प्रश्न हुआ। यदि

इस लग्न के पन्द्रहवें अंश में प्रश्नलग्न होवे तो मूल प्रश्न हुआ और १८वें अंश में हो तो जीव प्रश्न हुआ। समलग्न में इससे विपरीत जीव, मूल, धातु गिनना चाहिये। उदाहरणार्थं बृश्चिक लग्न के १२ अंश पर चौथा नवांश होने से जीव प्रश्न सम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये। इस प्रकार धातु सम्बन्धी यदि प्रश्न का निश्चय हो जावे तो उक्त दो श्लोकों की सहायता से सोने, चांदी, लोहे आदि का निश्चय करना चाहिये ॥३६–३७॥

चुराया गया द्रव्य कहां रक्खा है अथवा घर से निकल कर अमुक व्यक्ति कहां चला गया है, यह जानने के लिये ग्रहों के विशेष स्थानों को कहते हैं—

शुक्रे चन्द्रे जलाधारो देवतावसतिगुरौ।
रवौ चतुष्पदस्थानमिष्टकनिचयो बुधे ॥ ३८ ॥
दग्धस्थानं कुजे प्रोक्तं शनौ राहौ च वाह्यभूः।
अमीभिर्हिबुकस्थाने नष्टभूमिं विलोकयेत् ॥ ३९ ॥

अर्थ— शुक्र या चन्द्रमा हो तो जलस्थान, गुरु हो तो देवता का स्थान अर्थात् मन्दिर आदि, सूर्य हो तो पशुओं के रहने का स्थान, बुध हो तो ईंट पत्थरों का स्थान ॥ ३८ ॥ मंगल होने पर जला हुआ स्थान [रसोई आदि], तथा शनि और राहु होने पर बाहर की भूमि [बन, पर्वत, खेत] अथवा मलस्थान अर्थात् रूड़ी आदि [वहिः=मलस्थान] कहा गया है। इन [ग्रहों] के द्वारा चतुर्थ स्थान में नष्ट वस्तु [चोरित वस्तु, गुम हुआ व्यक्ति] का विचार करना चाहिये ॥३९॥

व्याख्या—यदि कोई यह प्रश्न करे कि अमुक गुम हुआ पुरुष कहां है अथवा चुराया गया धन कहां छिपा रक्खा है, तो इन पूर्व-कथित २ श्लोकों की सहायता से अनुमान लगाया जाता है। भाव यह हैं कि यदि शुक्र अथवा चन्द्र वलसहित लग्नस्थित हो या लग्न को देखे तो

कहना चाहिए कि नष्ट वस्तु अथवा गुम गया व्यक्ति जलीय स्थान, कुआँ, वावड़ी, नहर, नदी आदि के समीप है। यदि मंगल का लग्न के साथ ऐसा ही सम्बन्ध हो तो रसोई, इंजन स्थान, तन्दूर, हलवाई, कारखाना आदि कहना। बुध से ईंट, चूना, पत्थर से बने मकान, सिनिमा, थियेटर, अजायबघर, कीडास्थान आदि कहना। इसी प्रकार शेष ग्रहों के सम्बन्ध में जान लेना। इसी प्रकार लग्न का स्वामी यदि चतुर्थ स्थान में हो अथवा चतुर्थ स्थान को देखता हो तो उस ग्रह का जो स्थान है उसके अनुसार नष्ट वस्तु या गुम हुए व्यक्ति के स्थान को कहना। परन्तु याद रहे कि यह फलादेश तभी मिलेगा यदि कोई ग्रह लग्न वा चतुर्थ स्थान से युति वा दृष्टि सम्बन्ध रखता हो। यदि ऐसा न हो तो सत्याचार्य, उत्पल, पृथुयशा आदि ज्योतिषियों के मतानुसार केवल प्रश्नलग्न की राशि द्वारा ही स्थान विशेष कहना चाहिए। प्रश्नलग्न में यदि मेषराशि हो तो भूमि में; वृष में गोकुलादि स्थान [किसानों के निवास स्थान, पशुओं के विचरने वाले स्थानों, गोशाला, डेरी फार्म आदि] में; मिथुन में गीतनृत्य स्थान, विनोदशाला, सिनेमा, सर्कस, थिएटर, कला भवन, शैक्षिक संस्था, कीडाभवन, संग्राम भूमि में; कर्क में जल के समीप; सिंह में अरण्य भूमि, व्यायामशाला, दुर्गम तथा अगम्य स्थानों में; कन्या में नौका के समीप, चरागाहों, रमणियों के विहार स्थान, कन्या पाठशालाओं में; तुला में दुकान, क्रय-विक्रय के स्थानों, वाणिज्य व्यापार के केन्द्र, सड़कों, कचहरी, महसूलखानों में; वृश्चिक में खड्डों और विलादि स्थान अथवा गुप्तस्थानों में; धनुमें सैन्यागार, दुर्ग, पोलीस की चौकी, वारक, युद्धभूमि, यज्ञभूमि में; मकर में जल के समीप; कुम्भ में शिलागृह बर्तनादि के घर में, मदिरा स्थानों, द्यूतस्थानों आदि में; मीन में जलीय स्थानों, तड़ाग, समुद्रतीर, मन्दिर आदि में नष्ट वस्तु गई है। बुद्धिवशात् गुम गए पुरुष बावत भी अनुमान लगाना चाहिए, जैसे

मेष लग्न में भूमि में सिद्ध होने से यह कहना चाहिए कि खोदी हुई भूमि, खाई, सूखे हुए पुल के नोचे अथवा निम्नस्थान में गुम गया पुरुष है ॥ ३८-३९ ॥

जीवादि प्रश्न में जीव पुरुष है वा स्त्री, यह जानने के लिये ग्रहों की पुरुषस्त्री संज्ञा को कहते हैं—

जीवमङ्गलमार्त्तण्डान्वदन्ति पुरुषान्बुधाः ।
सोमसोमजमन्दाहिभृगुपुत्रांश्च योषितः ॥ ४० ॥

अर्थ—पंडितजन बृहस्पति, मंगल और सूर्य को पुरुषग्रह और चन्द्रमा बध, शनि, राहु और शुक्र को स्त्रीग्रह कहते हैं ॥ ४० ॥

व्याख्या—आचार्य ने श्लोक में ग्रहों को पुरुषसंज्ञक तथा स्त्री-संज्ञक भागों में विभक्त किया हैं। इस का प्रयोजन यह है कि जीवचिन्ता सम्बन्धी प्रश्न में अमुक जीव पुरुष है वा स्त्री यह जानना हो तो लग्न से पुरुष ग्रह का सम्बन्ध होने से पुरुष तथा स्त्री ग्रह का सम्बन्ध होने से स्त्री कहना चाहिए। इसी प्रकार बस्तुस्थापक, ग्राहक, चौर आदि पुरुष-संज्ञक हैं किवा स्त्री संज्ञक, यह जानने के लिए भी इसी श्लोक का प्रयोग किया जाता है ॥ ४० ॥

जीवसम्बन्धी प्रश्न में जीव की अवस्था जानने के लिए ग्रहों की अवस्था को कहते हैं—

युवा कुजः शिशुः सौम्यः शशिशुक्रौ च मध्यमौ ।
मन्दमार्तण्डदेवेज्यफणिनः स्थविरा ग्रहाः ॥ ४१ ॥

अर्थ - मंगल युवा (जवान) है, बुध वालक, चन्द्रमा और शुक्र मध्यमावस्था; शनि, सूर्य, बृहस्पति और राहु बृद्ध हैं ॥ ४१ ॥

व्याख्या—चोर की जाति, वर्णादि पर पहले विचार किया जा चुका है। इस श्लोक की सहायता से चोर की अवस्था (आयु) का अनु-मान लगाया जाता है। भाव यह कि यदि चौथे स्थान का पति मंगल

चौथे स्थान में स्थित हो अथवा चौथे स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखे तो चोर जवान है अर्थात् ३०-३२ वर्ष का है। यदि चतुर्थेश बुध का चतुर्थ स्थान से युति वा दृष्टि सम्बन्ध हो तो चोर बाल्यावस्था अर्थात् बारह वर्ष के लग भग है। इसी प्रकार चन्द्रमा या शुक्र का सम्बन्ध होने से चोर की आयु मध्यम अर्थात् चालीस वर्ष कहना चाहिए। सूर्य, शनि, गुरू और राहु का सम्बन्ध होने से बृद्धावस्था कहनी चाहिए। पिछले श्लोक में चोर की पुंस्त्री संज्ञा पर विचार किया गया था। अतः यदि चतुर्थेश पुरुष ग्रह है तो इतनी अवस्था पुरुष की, यदि स्त्री ग्रह है तो इतनी अवस्था स्त्री की है। यह भली भांति समझ लेना चाहिये ॥ ४१ ॥

अब ग्रहों की क्रूर सौम्यादि प्रकृति पर प्रकाश डालते हैं—

भौममन्दार्कभोगीन्द्राः प्रकृत्या दुःखदा नृणाम् ।
ज्ञगुरुश्वेतकिरणशुक्राः सुखकराः सदा ॥ ४२ ॥

अर्थ—मंगल, शनि सूर्य और राहु स्वभाव से ही मनुष्यों के लिए दुःख दायक हैं। बुध, बृहस्पति, चन्द्रमा और शुक्र सदा सुख के देने वाले हैं ॥ ४२ ॥

व्याख्या—ग्रहों के सौम्यक्रूरादि स्वभाव द्वारा प्रश्न कर्त्ता, चोर ग्राहक, शत्रु, मित्रादि के स्वभाव का ज्ञान होता है। सौम्यग्रहों द्वारा सौम्य गुणों की अधिकता और क्रूर ग्रहों द्वारा क्रूर ग्रहों की अधिकता का अनुमान लगाया जा सकता है। सौम्यगुणी पुरुष प्रायः श्रद्धावान्, शान्ति-प्रिय, परोपकारी, चरित्रवान्, हँसमुख, दयालु, पवित्र, वस्त्रों और भूषण गन्धादि के प्यारे, साधुसेवी, सहनशील होते हैं। क्रूरगुणी पुरुष प्रायः स्वार्थी, दीर्घसूत्री, दुराचारी, गन्दे, धोखे बाज, ईर्ष्यायुक्त, वाद-विवाद में तत्पर, क्रोधी, हिंसक होते हैं। सौम्य ग्रहों के योग से सौम्य

प्रकृति और क्रूरग्रहों के योग से क्रूरगुणों की प्रधानता का बोध होता है ॥ ४२ ॥

इति ग्रहस्वरूपादिद्वारम् ॥ ६ ॥

द्वादश भावों पर विचार करते हुए पहले यह बताते हैं कि लग्न अथवा प्रथम भाव से क्या क्या विचारना चाहिए—

रूपलक्षणवर्णानां क्लेशदोषसुखायुषाम् ।
वयः प्रमाणजातीनां तनुस्थानान्निरीक्षयेत् ॥ ४३ ॥

अर्थ—स्वरूप [दीर्घलघु पुष्टकृशादि] लक्षण, [तिलमशकादि चिन्ह], वर्ण [गौर कृष्णादि रंग], क्लेश [दुःख कष्टादि], दोष [छिद्र, अवगुणादि], सुख [स्त्रीपुत्रधनशरीरादि], आयु [उमर], वयप्रमाण [बाल युवावृद्धावस्था], जाति [ब्राह्मणादि अथवा कुलादि] इन सब का तनुभाव [लग्न] से विचार करे ॥ ४३ ॥

व्याख्या—साठ घड़ियों या चौवीस घंटों में एक बार पृथ्वी राशि-चक्र के गिर्द घूम जाती है, जिस के फल-स्वरूप दिन रात तथा कालगणना का जन्म होता है। पृथ्वी के निजी अक्षरेखा (Axis) पर चौबीस घंटों में एक बार परिभ्रमण (Rotation) के कारण ये राशिएँ, हमारे भूमण्डल के प्रति, नियमानुसार यथाक्रम व्यक्त होती रहती हैं। किन्तु पृथ्वी के सूर्य के गिर्द परिक्रमण (Revolution) के कारण ये राशिएँ आकाश मंडल में शनैः शनैः सरकती-सी रहता हैं। इस लिए इन राशियों का फलित ज्योतिष में दो प्रकार का महत्व है—काल सम्बन्धी तथा भौतिक। जन्म अथवा प्रश्नकाल समय इष्टकाल के अनुसार उदय क्षितिज में जो राशि लगी रहता है उस का देह के साथ उदय होने के कारण तनुभाव अथवा लग्न नाम रखा गया है। तनु से लेकर व्यय तक बारह भाव कहलाते हैं और ये बारह भाव आकाश (Space) के भौतिक भाग हैं, किन्तु बारह राशिएँ केवल काल-विभाग

(Divisions of Time) हैं। लग्न इन बारह राशियों में से कोई भी हो सकता है क्योंकि चौबीस घंटों में बारह लग्न यथा-क्रम बदलते रहते हैं।

इस श्लोक में आचार्य ने लग्न अथवा प्रथम भाव (तनु भाव) से जन्म या प्रश्न कुंडली में जो जो विचार किया जाता है, उस उस का विवरण दिया है। यदि लग्न अपने स्वामी से युक्त वा दृष्ट हो वा शुभ ग्रह उस में बैठे हों या उन की दृष्टि लग्न पर हो तो पुष्ट शरीर, गौर वर्ण, शुभलक्षणयुक्त, क्लेशरहित, सौम्य प्रकृति, दीर्घायु, उत्तम-कुलोत्पन्न, आरोग्यवान्, उत्तम गुणसम्पन्न आदि विशेषण उस जातक अथवा प्रश्न कर्त्ता आदि में होने चाहिएं। यदि लग्नेश का लग्न से युति दृष्टि सम्बन्ध न हो, न ही शुभ ग्रह लग्न से सम्बन्धित हों किन्तु पाप ग्रहों का ही लग्न से सम्बन्ध हो तो उलटा फल कहना चाहिए। मिश्र योग में अर्थात् शुभ और पापी ग्रहों के सम्बन्ध से मिश्र फल कहना चाहिए। इसी प्रकार अन्य भावों में फल का कथन करना चाहिए ॥ ४३ ॥

अब दूसरे भाव से जिस २ वस्तु का विचार किया जाता है, उसे कहते हैं---

मणिमुक्ताफलं स्वर्णं रत्नधातुकदम्बकम् ।
क्रयाणकार्धज्ञानानि धनस्थानान्निरीक्षयेत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—मणि [पन्ना, पुखराज, नीलम, मानक, लहसनिया, वैडूर्य], मोती, सोना, रत्न (हीरा), धातुसमूह (चांदी, सिक्का, कली, जिस्त, ताँबा, लोहा, गेरु आदि], क्रयाणक (मंजिष्ठादि धान्य विशेष अथवा करियाना), के मन्दा तेज़ी का विचार धनस्थान (दूसरे भाव) से करना चाहिए ॥ ४४ ॥

अब तीसरे भाव पर विचार करते हैं—

भगिनीभ्रातृभृत्यानां दासकर्मकृतामपि ।

कुर्वीत वीक्षणँ विद्वान्सम्यग्दुश्चिक्यवेश्मनि ।। ४५ ।।

अर्थं—विद्वान् को चाहिए कि तीसरे भाव से बहिन. भाई, नौकर, सेवक (दास, टहल करने वाले) आदि का विचार करे ।। ४५ ।।

अब चतुर्थ भाव से क्या विचारना चाहिए, इस पर प्रकाश डालते हैं—

वाटिकाखलकक्षेत्रमहौषधिनिधीनिह ।

विवरादिप्रवेशं च पश्येत्पातालतो बुधः ।।४६।।

अर्थ—फुलवाड़ी, खलक [धान्य कूटने और मर्दन करने का स्थान], महौषधि [दवाइएं], सब प्रकार की निधिएं [खानें], क्षेत्र [खेत, भूमि, जायदाद] ये सब पंडितजन चतुर्थभाव से देखें ।।४६।।

अब पंचमभाव सम्बन्धी विचार करते है—

गर्भापत्यविनेयानां मन्त्रसाधनयोरपि ।

विद्याबुद्धि प्रबन्धानां सुतस्थानाद्विनिश्चयः ।।४७।।

अर्थ—गर्भ, सन्तान, विनेय (शिष्यादि), मन्त्र की साधना, विद्या, बुद्धि, ग्रन्थरचना आदि का निश्चय सुतस्थान [पंचमभाव] से करे ।।४७।।

अब छटे स्थान पर विचार करते हैं—

सैरिभीरिपुसंग्रामगवोष्ट्रक्रूरकर्मणाम् ।

मातुलातङ्कशङ्कानां रिपुस्थानाद्विनिर्णयः ।।४८।।

अर्थ—भैंस, वैरियों से युद्ध, गाय, ऊंट, क्रूर कर्म [छेदभेदादि] मामा, भय, सन्देह आदि का निर्णय षष्ठ भाव से करे ।।४८।।

अब सप्तभ भाव पर विचार किया जाता है—

वाणिज्यं व्यवहारं च विवादं च समं परैः ।

गमागमकलत्राणि पश्येत् प्राज्ञः कलत्रतः ।।४९।।

अर्थ—वणिज व्यापार, व्यवहार [व्याज पर रुपया लगाना], बेगानों के साथ लड़ाई, गमागम [यात्रा पर जाना और लौटना], स्त्री, इन सब को पंडित लोग सप्तम भाव [कलत्रस्थान] से देखें ॥४९॥

अष्टमभाव से क्या देखना चाहिये, इस पर आचार्य कहते हैं –

नद्युत्तारेऽध्ववैषम्ये दुर्गे शात्रवसंकटे ।
नष्टे दष्टे रणे व्याधौ छिद्रे छिद्रं निरीक्षयेत् ॥५०॥

अर्थ—नदी पार करने में, मार्ग [सफर] की कठिनाई में, दुर्गभंग अर्थात् किले को जीतने में, शत्रुओं द्वारा बन्धन, मोक्षादि संकटों में अपनी मृत्यु अथवा धन की चोरी में, सर्प, कुत्ते आदि द्वारा काटे जाने में, लड़ाई में, रोग में और छिद्र [अकस्मात् रोग अथवा शाकिन्यादि दोष], में छिद्रभाव [अष्टम स्थान] से देखे ॥५०॥

अब नवमभाव पर प्रकाश डालते हैं—

वापीकूपतडागादि प्रपादेवगृहाणि च ।
दीक्षा यात्रा मठं धर्मं धर्मान्निश्चित्य कीर्तयेत् ॥५१॥

अर्थ—बावड़ी, कुओं, तड़ाग [तालाब] आदि, जलपान का स्थान, मन्दिर, मंत्रग्रहण [शिष्यत्व], तीर्थयात्रा, धर्मशाला, धार्मिक वृत्ति का धर्मभाव [नवमभाव] से निश्चय करके कहे ॥५१॥

अब दशम भाव सम्बन्धी कहते हैं—

राज्यं मुद्रां पुरं पण्यं स्थानं पितृप्रयोजनम् ।
वृष्ट्यादि व्योमवृत्तान्तं व्योमस्थानाद्विलोकयेत् ॥५२॥

अर्थ—राज्य [राजगद्दी अथवा राजकीय वृत्ति, सर्विस आदि], मुद्रा [राजमुद्रा करन्सी, रुपये आदि के सिक्के], नगर, पण्य [कृत्य, कार्य], स्थान [समाज में स्थान अथवा पोजीशन, स्टेटस], पितृकार्य [पिता का सुख अथवा होमतर्पणादि पितृकर्म], वर्षा आदि ऋतु समाचार, ये सब दशमभाव से देखे ॥५२॥

अब एकादशभाव के सम्बन्ध में विचार करते हैं—

गजाश्वयानवस्त्राणि सस्यकाञ्चनकन्यकाः ।
विद्वान्विद्यार्थयोर्लाभं लक्षयेल्लाभलग्नतः ॥५३॥

अर्थ—हाथी, घोड़ा, यान [सवारिएं अर्थात टांगा, मोटर आदि], कपड़े, धान्य, सोनाचांदी, कन्या, विद्या और धन का लाभ—ये सब विद्वान् लाभ भाव [ग्यारहवें भाव] से देखे ॥५३॥

अब द्वादश भाव बावत लिखते हैं—

त्यागभोगविवाहेषु दानेष्टकृषिकर्मणि ।
व्ययस्थानेषु सर्वेषु विद्धि विद्वन्व्ययं व्ययात् ॥५४॥

अर्थ—हे विद्वन् ! सुख भोगने तथा विवाहों पर खर्च अथवा धन त्याग करने, दान, इच्छितकर्म, खेती और सब कामों पर खर्च के लिये व्यय भाव [खर्च] अर्थात् बारहवें भाव से जानो ॥५४॥

इति द्वादशभावविचारद्वारम् ॥७॥

अब इष्टकाल जानने की विधि कहते हैं—

भागं वारिधिवारिराशिशशिषु प्राहुर्मृगाद्ये बुधाः,
षट्के बाणकृपीटयोनिविधुषु स्यात्कर्कटाद्ये पुनः ।
पादैः सप्तभिरान्वितैः प्रथमकं मुक्त्वा दिनाद्ये दले,
हित्वैकां घटिकां परे च सततं दत्त्वेष्टकालं वदेत् ॥५५॥

अर्थ—शरीर की छाया को अपने पाँव से माप कर उसमें सात मिलाकर एक न्यून करे । इसे भाजक कल्पना करे । इसे मकरादि छः राशियों के सूर्य में [अर्थात् उत्तरायण में] १४४ से भाग दे और कर्कादि छः राशियों [अर्थात् दक्षिणायन] के सूर्य में १३५ से भाग दे । जो लब्ध हो, उसमें यदि दोपहर से पहले का हो तो एक घटाने से और यदि दोपहर के बाद हो तो एक जोड़ने से इष्ट घटी बतावे ॥५५॥

व्याख्या—यह प्राचीन काल की रीति है जब घटीयँत्रों का अभाव था। मेरे पूर्वज दियासलाई की डब्बी को अंगुली से मापकर धूप में रख उसकी छाया को अंगुलियों से नाप कर, गणित का प्रयोग करके समय निकाल कर इष्टादि बनाते थे। वे कई बार मुझ से यह कार्य कर्वाया करते थे। मुझे स्मरण है कि जब मैं दश बारह वर्ष का था मेरे पितृव्य मुझ से ही सलेट पर गणित कराया करते थे और अपने किसी शिष्य को दूर घड़ी का समय लाने को कहते थे। मुझे विस्मय होता था कि जो समय गणित द्वारा आया करता था वही घड़ी का समय हुआ करता था। आजकल स्टैंडर्ड टाइम से लोकल टाइम बनाकर इष्टकाल बनाया जाता है। अतः हम ने इस श्लोक की सोदाहरण व्याख्या छोड़दी है ॥५५॥

इति इष्टकालज्ञानद्वारम् ॥८॥

अब आचार्य लग्नसम्बन्धी बिचार करते हैं—

इन्दुः सर्वत्र बीजाभो लग्नं तु कुसुमप्रभम् ।
फलेन सदृशोंऽशश्च भावः स्वादुसमः स्मृतः ॥५६॥

अर्थ—चन्द्रमा सर्वत्र बीज के तुल्य है, किन्तु लग्न पुष्प के सदृश है, नवांश फल के समान है और भाव [फल के] स्वादु के सदृश कहा गया है ॥५६॥

व्याख्या—जन्म-काल अथवा प्रश्न काल में यदि चन्द्रमा बलिष्ट हो तो कार्य का बीज भी बलिष्ट जानना। लग्न बलिष्ट होने से कार्य का पुष्प [फ़ूल], नवांश बलिष्ट होने से कार्य का फल और भाव बलिष्ट होने से कार्य का स्वाद भी बलिष्ट जानना। भाव यह है कि प्रश्नकाल, जन्म काल, वर्षकाल आदि में यदि चन्द्रमा, लग्न, नवांश और भाव बली हों तो कार्य की पूर्ण सिद्धि होती है। यदि इन चार में से तीन बली हों तो तीन चौथाई कार्य की सिद्धि

होगी। यदि दो बली हों तो आधे कार्य की और केवल एक बली होने से कार्यसिद्धि केवल चतुर्थांश होगी। प्रत्येक प्रश्न में चन्द्रमा की युति, दृष्टि, बलादि का प्रथम विचार करे। तदनन्तर लग्न का, फिर नवांश और फिर द्वादशभावों में जिस भाव सम्बन्धी प्रश्न है उसके बलावल का विचार करके ज्योतिषी को प्रश्न का फल कथन करना चाहिये। प्रत्येक प्रश्न में प्रधानता चन्द्रमा को दी गई है ॥५६॥

अब आचार्य लग्न के भूत, भविष्य, वर्तमान स्वरूप को कहते हैं—

उदितं चिन्तयेद्भावँ भावि भूतं च चिन्तयेत् ।
कार्यभावेन योगं च कार्यभावस्थितं ग्रहम् ॥५७॥

अर्थ—प्रथम उदित [लग्न] भाव को विचारे और फिर भूत और भविष्यत् भाव की चिन्ता करे। कार्यभाव [अर्थात् जिस भाव-सम्वन्धी कार्य हो] के भाव द्वारा योग और कार्यभावस्थित ग्रह को भी विचारे ॥५७॥

व्याख्या—लग्न से त्रिकाल—भूत, वर्तमान, भविष्यत्—सम्बन्धी बातों का पता लगाया जा सकता है, यह जानने के लिये भिन्न भिन्न लग्नों के परिमाणों से परिचित होना चाहिये। साधारणतः मेष और मीन लग्न का परिमाण तीन तीन घटी, वृष और कुम्भ का चार चार घटी, मिथुन और मकर का पाँच पाँच घटी और शेष लग्नों—कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु—का परिमाण छः छः घटी है। प्रत्येक घटी २४ मिंट की होती है। प्रश्नलग्न को तीन भागों में विभक्त करे और जो भाग व्यतीत हो गया है उसे अतीत [भूत] समझे और जो भाव आगे शेष रहेगा वह भविष्यत् [बीतने वाला] और जो भाग बीत रहा है उसे वर्त्तमान समझना चाहिए। यह

सामान्य रीति है । लग्न के स्पष्ट अंशों से भी इस का अनुमान लगाया जा सकता है । प्रत्येक राशि में तीस अंश होते हैं ।

उदाहरण—जैसे किसी ने तुला लग्न में उस समय प्रश्न किया जब तुलाराशि के १५ अंश बीत चुके हैं तो समझना चाहिये कि कार्य का लगभग आधा भाग अच्छा या बुरा फल दे चुका है और शेष आधा अपने भावेश, ग्रह बलाबल, युति, दृष्टि द्वारा बाकी है ॥५७॥

अब लग्नेश के स्वरूप पर विचार करते हैं—

उदितस्यादौ भावस्याधिपतिं चिन्तयेत्प्रयत्नेन ।
तदनु च नाथो यस्मिन्नासीद्भावे विचार्यं तत् ॥५८॥

अर्थ—प्रथम उदितभाव [लग्न] के स्वामी की यत्नपूर्वक चिन्ता करे, तदनन्तर उस भाव का विचार करे जिस में [लग्न का] स्वामी स्थित हो ॥५८॥

व्याख्या—प्रथम लग्नेश के शुभाशुभ स्थान को विचारे अर्थात् उसकी उदय, अस्त, उच्च, नीच, वक्र, मित्र, शत्रु राशि, को देखे । तदनन्तर लग्नेश जिस भाव में है उसके बलाबल को विचारे और उस का युवा, कुमार, वृद्धा, मृता, विनष्ट आदि अवस्था का विचार करे । ग्रह के स्वक्षेत्र, उच्च, नीच, मित्र, शत्रु आदि पर श्लोक ११ से २० पर्यन्त विचार किया जा चुका है । जब सूर्य के निकट आने से ग्रह का प्रकाश मांद पड़ जाता है तो उसे अस्त कहा जाता है । चन्द्रादि ग्रहों का अन्तर जब सूर्य से क्रमशः १२, १७, १४, १२, ११, १०, ८, १५, अंश हो तो वे अस्त गिने जाते हैं । जब ग्रह की गति पूर्वाभिमुख की अपेक्षा पश्चिमाभिमुख हो अथवा पृथ्वी और ग्रह की गति-विशेष के कारण ग्रह उलटी (वक्र) चाल चलता है तो उसे वक्री कहा जाता है । पर स्मरण रहे कि सूर्य और चन्द्र सदैव मार्गी

(सीधी चाल वाले अथवा पूर्वाभिमुख गतिशील) हैं और राहु तथा केतु सदव वक्र गतिशील हैं। शेष ग्रह मार्गी और वक्री दोनों गतिशाल हो सकते हैं। इसी प्रकार अंशों के आधार पर ग्रह की पांच प्रकार की अवस्था मानी गई है। बिषम राशि (१,३,५,७,९,११) में शून्यांश से छः अंश तक बाल अवस्था, छः से बारह अंश तक कुमार अवस्था, बारह से उपरान्त १८ तक युवावस्था, १८ से उपरान्त २४ अंश तक वृद्धावस्था, और २४ से उपरान्त ३० अंश तक मृता अवस्था मानी गई है। समराशि (२,४,६,८,१०,१२) में इस से विपरीत अर्थात् शून्यांश से छः अंश तक मृतावस्था, ६ से उपरान्त १२ अंश तक वृद्धावस्था, १२ से उपरान्त १८ अंश तक यौवनावस्था, १८ से उपरान्त २४ तक कुमार अवस्था, और २४ से उपरान्त ३० अंश तक वालावस्था कहाती है। इनका फल भी इसी प्रकार बाल, कुमार, युवा, वृद्ध, मृत आदि होता है। विनष्टादि ग्रह संज्ञा पर आगे श्लोक ३७ में विचार किया गया है। सारांश यह है कि लग्नेश के बलाबल, उदयास्त, ऊच्चनीच, अवस्था आदि का विचार सर्वप्रथम करना चाहिए। इसी प्रकार धनादि द्वादशभावों में भी करना चाहिए ॥५८॥

अब प्रश्न लग्नाधिपति बाबत बिचार किया जाता है—

भावोऽथ कार्यरूपो यस्तदधिपलग्नाधिपौ चिन्त्यौ ।
वीक्षणयोगौ भावाधिष्ठातारौ पुनश्चिन्त्यौ ॥५९॥

अर्थ—कार्य सम्बन्धी जो भाव है उसके स्वामी और लग्नेश (इन दो की) चिन्ता करे। फिर इन दोनों भावों के स्वामियों के योग, दृष्टि आदि पर विचार करे ॥५९॥

व्याख्या—यहां कार्यरूप का अर्थ यह है कि जिस भाव सम्बन्धी प्रश्न हो वह कार्यरूप होता है। यदि प्रश्न सन्तान सम्बन्धी है तो पंचम भाव को कार्यरूप कहा जाएगा। इसी प्रकार सप्तम, नवम,

दशम, एकादश भावों को क्रमशः स्त्री (व्यापार), भाग्य, राज्य, लाभ कार्य-भाव माना जायेगा। द्वादश भावों में से जिस भाव सम्बन्धा प्रश्न हो वह कार्यभाव, उसके स्वामी तथा लग्नेश के योग, वीक्षण (दृष्टि) पर विचार करने के उपरान्त ही फलादेश के शुभाशुभ का अनुमान लगाया जा सकता है। ग्रहों का दृष्टि पर आगे श्लोक ६२ में विचार किया गया है ॥५९॥

अब दो श्लोकों द्वारा कार्य की पूर्णसिद्धि पर विचार करते हैं—

लग्नपतिर्यदि लग्नं कार्याधिपतिश्च वीक्षते कार्यम्।
लग्नाधीशः कार्यं कार्येशः पश्यति विलग्नम् ॥६०॥
लग्नेशः कार्येशं विलोकते विलग्नपं तु कार्येशः।
शीतगुदृष्टौ सत्यां परिपूर्णा कार्यनिष्पत्तिः ॥६१॥

अर्थ—यदि लग्नेश लग्न को और कार्येश कार्यस्थान को देखे, तथा लग्नेश कार्यभाव को और कार्येश लग्न को देखे ॥६०॥

लग्नेश कार्येश को देखे और कार्येश लग्नेश को देखे और इन पर चन्द्रमा की दृष्टि हो तो पूर्ण कार्य की सिद्धि जानना चाहिये ॥६१॥

व्याख्या—यहां आचार्य ने पूर्ण सिद्धि के तीन योग कहे हैं। (१) लग्नेश का लग्न और कार्येश का कार्यभाव से दृष्टि सम्बन्ध और चन्द्रमा की पूर्ण दृष्टि, (२) लग्नेश का कार्यभाव और कार्येश का लग्न से दृष्टि सम्बन्ध और साथ ही चन्द्रमा का पूर्ण-दृष्टि सम्बन्ध, (३) लग्नेश और कार्येश का तथा कार्येश लग्नेश का परस्पर दृष्टि सम्बन्ध और साथ ही चन्द्रमा का पूर्णदृष्टि सम्बन्ध। इन तीनों योगों में से यदि एक योग भी पूर्णरूप से मिलता हो तो ज्योतिषी को उस कार्यसम्बन्धी पूर्णसिद्धि का फलादेश कहना चाहिए।

उदाहरण—

किसी व्यक्ति ने धनुलग्न में हम से प्रश्न किया और उसके

अनुकूल हमने आगे दी गई कुण्डली बनाई । इस कुण्डली में लग्नेश बृहस्पति नवमभाव में स्थित होकर पूर्ण दृष्टि से लग्न और पंचम तथा तृतीय भाव को देख रहा है। पंचमेश भौम, धनभाव में स्वोच्च मकर राशि में स्थित, पंचम भाव में अपनी राशि मेष को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है और लग्नेश गुरु को

भी पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। सो यहां पर लग्नेश गुरु पंचमभाव अथवा पुत्र स्थान [कार्यभाव] को देख रहा है और कार्येश [पंचमेश] भौम पुत्रभाव को देख रहा है और इस के अतिरिक्त भौम पर चन्द्रमा की पूर्ण दृष्टि है। सो हमने उस प्रश्नकर्त्ता को स्पष्ट कह दिया कि आपका प्रश्न पुत्रसम्बन्धी है जो पूर्ण रूप से सिद्ध होगा। चूंकि लग्नेश गुरु लग्न को देखता है और भाग्येश सूर्य लग्न में गुरु से दृष्ट है इसलिए हम ने उसे यह भी कहा कि शीघ्र ही आप को कोई उच्चाधिकार प्राप्त होगा। चन्द्रमा मन है और भौम शस्त्रधारी नेता है सो हमने यह भी कह दिया कि यह उच्चाधिकार पोलीस या सेना बिभाग से सम्बन्धित होगा । यह अक्षरशः सत्य निकला । याद रहे कि दशमस्थान में शनि और राहु का योग भी सेना अथवा पोलीस विभाग का सूचक है। विदित हो कि हमने ६०वें श्लोक के पूर्वार्द्ध भाग का यहां प्रयोग किया । इसी प्रकार अन्य योगों का प्रयोग करके अपनी बुद्धि के अनुसार ग्रहों के बलाबल को विचार कर फलादेश कहने से कभी उपहास नहीं होता ॥६०—६१॥

अब पूर्वकथित ग्रहों की दृष्टि पर प्रकाश डालते हैं—

दशमतृतीये नवपंचमे चतुर्थाष्टमे कलत्रं च ।
पश्यन्ति पादवृद्ध्या फलानि चैवं प्रयच्छन्ति ।।
पूर्णं पश्यति रविजस्तृतीयदशमे त्रिकोणमपि जीवः ।
चतुरस्त्रं भूमिसुतः सितार्कबुधहिमकराः कलत्रं च ।।६२।।

अर्थ—[सब ग्रह अपने स्थान से] दशम तृतीय, नवम पंचम, चतुर्थ अष्टम, और सप्तभ स्थान को पादवृद्धि से देखते हैं और इसी प्रकार फल भी देते हैं । शनि तृतीय और दशम को, बृहस्पति त्रिकोण [नवम और पंचम] को , मंगल चतुरस्त्र [चौथे और आठवें] को, तथा शुक्र, सूर्य, बुध और चन्द्रमा सप्तम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं ।।६२।।

व्याख्या—किसी ग्रह और भाव के राश्यान्तर को दृष्टि कहते हैं । इसका सम्बन्ध एक भाव का दूसरे भाव से है । इसी प्रकार दो ग्रहों में पारस्परिक दृष्टि सम्बन्ध तब होता है जब उन के मध्य में विशेष निर्दिष्ट रैखिकीय अन्तराल हो । रेडियो वैज्ञानिकों का ध्यान भी ग्रहों की दृष्टि की ओर आकर्षित हुआ है । अमराका के प्रसिद्ध रेडियो वैज्ञानिक श्री जे. एच. नेलसन ने अपने अनुसन्धानों के बल पर ।सद्ध किया है कि ग्रहों के पारस्परिक अंशों के अन्तर के कारण ही आकर्षक वातक्षोभों की घटा बढ़ी होती है और उनका प्रभाव हमारा पृथ्वी पर भी पड़ता है । ग्रहों की ये रैखिकीय स्थितिएँ न केवल पृथिवी की चुम्बक शक्ति में क्षोभ ही पैदा करती हैं बल्कि वे निजी चुम्बकीय क्षेत्रों को जन्म देती हैं जिनका प्रवल प्रभाव चराचर जगत् पर पड़ता है । प्रत्येक व्यक्ति इस बात से परिचित है कि समुद्र में जवार भाटा की घटाबढ़ी सूर्य और चन्द्रमा की रैखिकीय स्थितियों द्वारा पैदा हुए अभ्याकृष्टीय क्षेत्रों के कारण ही है ।

यहां आचार्य ने बताया है कि सूर्य, चन्द्रमा, बुध और शुक्र अपने स्थान से दशवें-तीसरे, नवमें-पांचवें, चौथे-आठवें, और सातवें स्थान को

चरण वृद्धि करके देखते हैं अर्थात् एकचरण, दो चरण, तीन चरण, तथा पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। भाव यह कि उक्त चारों ग्रह अपने स्थान से दशवें और तीसरे स्थान को एक चरण, नवमें और पांचवें को दो चरण, चौथे और आठवें को तीन चरण, तथा सातवें स्थान को चारों चरण अर्थात् पूर्णदृष्टि से देखते हैं। मंगल, शनि और गुरु भी अपने स्थान से सप्तम स्थान लो पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। इसके अतिरिक्त शनि, अपने स्थान से तीसरे-दशमें स्थान को, मङ्गल चौथे- आठवें स्थान को और गुरु नवमें और पाँचमें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। भाव यह कि शनि, मंगल आर गुरु तीन तीन स्थानों को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। और शेष ग्रह केवल एक एक स्थान को ही पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। प्रश्नशास्त्र में आम तौर पर ग्रहों की पूर्णदृष्टि को ही ग्रहण किया गया है। राहु और केतु अपने स्थान से पंचम और सप्तम स्थान को पूर्णदृष्टि से देखते हैं।

इससे यह स्पष्ट होता है कि ग्रह अपने स्थान से प्रथम, द्वितीय, छठे, ग्यारहवें और बारहवें स्थान को नहीं देखते। हाँ इन स्थानों में ग्रहों की युति होने से फलादेश में अन्तर पड़ता है।

प्रश्नशास्त्र में पूर्ण दृष्टि का विधान होने के कारण हम नीचे ग्रहों के दृष्टि चक्र को लिखते हैं ताकि पाठकवृन्द इस का सुगमता से आवश्यकतानुसार प्रयोग कर सकें।

ग्रहदृष्टि-चक्र

ग्रह	सू०	चं.	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	रा०	के०
पूर्णदृष्टि-स्थान	७	७	४,८ ७	७	५,९ ७	७	३,१० ७	५,७	५,७

जैसे मनुष्य अपने दाएँ वाएँ अर्थात् दक्षिण और वाम पक्ष की अपेक्षा सम्मुख पदार्थ का पूर्ण दृष्टि से देखता है, इसी प्रकार ग्रह भी अपने

सम्मुख स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। यह तब होता हैं जब द्रष्टा और पदार्थ सरल रेखा में हों अथवा उनमें १८० अंशों का अन्तर हो। पहले स्थान से सप्तम स्थान तक भी सरल रेखा अथवा छः राशियों या १८० अंशों का अन्तर है। उदाहरणार्थ, पूर्णिमा का चन्द्र सदैव पूर्वदिशा में सूर्यास्त के समय दिखाई पड़ता है क्योंकि पूर्णिमा के समय सूर्य और चन्द्रमा एक दूसरे से १८० अंश दूर होते हैं और सूर्य का पूरा बिम्ब चन्द्रमा पर पड़ता है। अमावस्या को जब सूर्य और चन्द्रमा का पारस्परिक रैखिकीय अन्तर केवल शून्यांश होता है, चन्द्रमा बिम्बहीन होता है क्योंकि सूर्य का बिम्ब उस पर नहीं पड़ता। चन्द्रमा की इस क्षयवृद्धि से ज्ञात होता है कि प्रत्येक ग्रह अपने स्थान से सप्तम स्थान को पूर्णदृष्टि से देखता है।

स्मरण रहे कि मार्गी ग्रह अपने स्थान से वामावर्त अथवा प्रतिघटिवत् दिशा में देखते हैं, किन्तु वक्री ग्रह तथा राहु और केतु सदैव अपने स्थान से दक्षिणावर्त अथवा घटीवत् दिशा में देखते हैं ॥६२॥

अब ग्रहों की दृष्टि द्वारा फल के न्यूनाधिक्य को कहते हैं–

कथयन्ति पादयोगं पश्यति सौम्यो न लग्नपो लग्नम् ।
लग्नाधिपश्च पश्यति शुभग्रहो नार्धयोगं च ॥६३॥

अर्थ—जो लग्नेश लग्न को न देखे किन्तु शुभ ग्रह देखें तो पादयोग (चौथाई योग) कहते है। और लग्नेश लग्न को देखे पर शुभग्रह न देखे तो आधा योग है ॥६३॥

व्याख्या—आचार्य ने श्लोक ४२ में बताया था कि शुक्र, गुरु, बुध और चन्द्र सौम्य ग्रह हैं, और शेष ग्रह पापी हैं। किन्तु यह मत सर्वमान्य नहीं है। वराहमिहिर बृहज्जातक के दूसरे अध्याय के पांचवें श्लोक में लिखता है कि **'क्षीणेंद्वर्कमहीसुतार्कतनयाः पापा बुधस्तैर्युतः'**

अर्थात् 'क्षीणचन्द्रमा, सूर्य, मंगल, शनि और इन से युक्त बुध पापी हैं।' बुध नपुन्सक ग्रह है और शुभग्रह की संगत में शुभ और पापग्रह की संगत में पापफल करता है। सारावली ग्रन्थ का कर्त्ता कल्यानवर्मा भी इसी मत को मानता है, यथा—**'गुरूबुधशुक्राः सौम्याः सौरिकुजार्कास्तु निसर्गतः पापाः । शशिजोऽशुभसंयुक्तः क्षीणश्च निशाकरः पापः ॥'** इसी मत को स्पष्ट करते हुए गुणाकर कहता है कि **'क्रूरग्रहाः कुजदिवाकरसूर्यसूनुक्षीणेन्दवः सहितस्तु तैः स्यात् । पूर्णेन्दुजीवभृगुजाः शुभसंज्ञिताः स्युस्तैः संयुतस्तुहिनरश्मिसुतोऽपि सौम्यः'** ॥ इन प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ कि गुरू, शुक्र, पूर्णचन्द्र और पापयोग रहित बुध सौम्य अथवा शुभ ग्रह हैं। क्षीणचन्द्र, सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु और पापयुत् बुध असौम्य अथवा पापग्रह हैं। क्षीणचन्द्र बारे भी दो मत हैं। पहले मत के अनुसार कृष्णाष्टमी से लेकर शुक्लपंचमी या शुक्लाष्टमी तक चन्द्रमा क्षीण है और तदनन्तर शुभ है। पर दूसरे मत वाले कहते हैं कि **'अमावस्यां चतुर्दश्यां क्षीणचन्द्रो न सर्वदा'** अर्थात् 'अमावस्या और कृष्णचतुर्दशी में ही चन्द्रया क्षीण होता है, न कि सदा ही।' यहां पर आचार्य ने चन्द्रमा को सदैव शुभ माना है, किन्तु हमारे विचार में क्षीणचन्द्रमा पाप फलदायक ही होता है।

श्लोक ६३ का अभिप्राय यह है कि यदि केवल शुभग्रह ही लग्न को देखे तो कार्यसिद्धि एक चौथाई मात्र ही रह जाती है, बाकी तीन चौथाई कार्य की सिद्धि नही होती, और यदि शुभग्रह की अपेक्षा, लग्नेश की लग्न पर पूर्णदृष्टि हो तो आधा कार्य सिद्ध होता है। आचार्य ने शुभग्रह की अपेक्षा लग्न पर लग्नेश की दृष्टि को प्रवल दिखलाया है, क्योंकि जो ग्रह अपते भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता है वह उसकी वृद्धि ही करता है। भावेश यदि भाव को देखे तो आधा फल और शुभग्रह भाव को देखे तो चतुर्थांश फल कहना चाहिए ॥६३॥

एकः शुभग्रहो यदि पश्यति लग्नाधिपो विलोकयति ।
पादोनयोगमाहुस्तदा बुधाः कार्यसंसिद्ध्यै ॥६४॥

अर्थ—पण्डितों ने कहा है कि यदि एक शुभग्रह और लग्नेश लग्न को देखें तो कार्यसिद्धि के लिए पादोनयोग अर्थात् पौन या तीन चौथाई योग है ॥६४॥

व्याख्या—श्लोक ६३ में लग्न पर एक शुभग्रह की दृष्टि होने से एकपाद कार्यसिद्धि, और लग्न पर लग्नेश की दृष्टि होने से दो पाद कार्य की सिद्धि कही गई है। यदि दोनों की ही दृष्टि हो तो तीन पाद अथवा तीन-चौथाई कार्य की सिद्धि का होना युक्तिसंगत ही है, जो आचार्य ने इस श्लोक में वर्णन की है ॥६४॥

लग्नपतिदर्शने सति शुभग्रहौ द्वौ त्रयोऽथवा लग्नम् ।
पश्यन्ति यदि तदानीमाहुर्योगं त्रिभागोनम् ॥६५॥

अर्थ—लग्नेश की लग्न पर दृष्टि होने पर यदि दो या तीन शुभग्रह लग्न को देखें तो त्रिभागोन योग कहा गया है ॥६५॥

व्याख्या—त्रिभागोन का अर्थ प्राचीन ग्रन्थों में तीन भाग कम बीस विंशोपका अर्थात् सत्तरह विंशोपका अथवा ८५ प्रतिशत् कार्यसिद्धि कही गई है ॥६५॥

क्रूरावेक्षणवर्जाश्चत्वारः सौम्यखेचराः लग्नम् ।
लग्नेशदर्शने सति पश्यंति पूर्णयोगकराः ॥६६॥

अर्थ—क्रूर ग्रहों की दृष्टि को छोड़कर चारों शुभ ग्रह [बुध, गुरु, शुक्र और पूर्णचन्द्र] लग्न को देखते हों और लग्नेश की लग्न पर दृष्टि होवे तो पूर्ण योग के देने वाले होते हैं ॥६६॥

व्याख्या—'पूर्णयोगकरा' का अर्थ यहां बीस विंशोपका अथवा सौ प्रतिशत् ग्राह्य है। भाव यह कि यदि लग्नेश लग्न को पूर्ण दृष्टि से देखे और चारों शुभ ग्रह भी लग्न को देखें और पापी ग्रहों

में से कोई भी लग्न को न देखे तो पूर्ण कार्यसिद्धि का योग माना गया है। इस से यह भी स्पष्ट होता है कि यदि किसी एक या दो पापग्रहों की दृष्टि हो तो कार्यसिद्धि में शुभाशुभ दृष्टि के अनुसार कमी बेशी की जानी चाहिए। क्रूर और सौम्य ग्रहों पर हम श्लोक ६३ की व्याख्या में विचार कर चुके हैं ॥ ६६ ॥

इति लग्नविचारद्वारम् ॥९॥

अब आचार्य विनष्ट ग्रह के लक्षणों पर विचार करते हैं—

क्रूराक्रांतः क्रूरयुतःक्रूरदृष्टस्तु यो ग्रहः ।
विरश्मितां प्रपन्नश्च स विनष्टो बुधैः स्मृतः ॥६७॥
क्रूरेण जीयमानो यो राहुपार्श्वे यथा रविः ।
क्राक्रांतः स विज्ञेयः क्रूरयुक्तः समेंऽशके ॥६८॥
पूर्णया दृश्यते दृष्ट्या क्रूरदृष्टः स उच्यते ।
प्रविविक्षुः प्रविष्टो वा सूर्यराशौ विरश्मिकः ॥६९॥

अर्थ—जो ग्रह क्रूरग्रह से आक्रान्त [पीडित] हो, क्रूरग्रह से युक्त हो, क्रूरग्रह से दृष्ट हो, और रश्मियों से रहित [निस्तेज] हो वह अस्तंगत ग्रह पंडितों द्वारा 'विनष्ट' संज्ञक कहा गया है ॥६७॥

क्रूरग्रह से पराजित ग्रह 'क्रूराक्रान्त' संज्ञक है, जैसे राहु के साथ सूर्य। क्रूरग्रह से युक्त ग्रह यदि एक ही नवांश में हो तो वह क्रूरयुक्त होता है ॥६८॥

जो क्रूरग्रह से पूर्ण दृष्टि से देखा जाता हो वह क्रूरदृष्ट कहलाता है। सूर्य की राशि [अर्थात् जिस राशि में सूर्य हो] में प्रवेश करने की इच्छा वाला अथवा सूर्य के साथ प्रविष्ट हो गया ग्रह 'विरश्मि' (अस्त) कहा जाता है ॥६९॥

व्याख्या—इन तीन श्लोकों द्वारा आचार्य ने ग्रहों की 'विनष्ट'

संज्ञा चार प्रकार की माना है—क्रूराकान्त, क्रूरयुत्, क्रूरदृष्ट, और विरश्मिक (अस्त)। ज्योतिष के अन्य ग्रन्थों में क्रूराकान्त ग्रह को 'अतिपीड़ित', 'पीड़ित', 'निपीड़ित' आदि संज्ञा दी गई है। जातकपारिजात (२—१८) में **'ग्रहाभिभूतस्त्वतिपीडित:'**, सारावली में **'ग्रहाभिभूतो निपीडित:'**, तथा गुणाकर के मतानुसार **'खेटार्दितोपीड़ित:'** आदि शब्दों में क्रूराकान्त ग्रह का वर्णन किया गया है। भाव यह है कि यदि किसी ग्रह के साथ एक या अधिक पापी ग्रह संयोग करें तो उनमें से जो बली ग्रह है अथवा मर्दन ग्रह है उसके तेज के सामने जिस ग्रह का तेज मांद पड़ जाता है, वह ग्रह पीड़ित अथवा क्रूराकान्त कहलाता है। इसी गतिविधि को 'ग्रहयुद्ध' भी कहा गया है और उसमें पराजित अर्थात् हारने वाले ग्रह को 'क्रूराकान्त' की संज्ञा दी गई है। पर स्मरण रहे, ग्रह की 'क्रूराकान्त' व्यवस्था तब होती है जब (१) ग्रह अधिक तेज वाले ग्रह की किरणों से पराजित हो, (२) राहु और केतु—छायाग्रहों—से मर्दित हो, (३) जब ग्रह सूर्य और क्षीणचन्द्र से युक्त हो; और (४) जब ग्रह सूर्यग्रहण अथवा चन्द्रग्रहण के समय, सूर्य अथवा चन्द्र से युक्त हो। 'क्रूरयुक्त' ग्रह केवल क्रूर ग्रह के योग मात्र से ही नहीं समझना चाहिये, अपितु समान नवांशों के आधार पर। नवांशों का विवरण हमने श्लोक ३८ और ३९ की व्याख्या में लिख दिया है। पाठकगण वहां से देख लें। आधुनिक विज्ञान मानता है कि सूर्य ही समस्त प्रकाश और गर्मी का पुंज है। चन्द्रादि सब ग्रह अपने प्रकाश के लिए सूर्य पर निर्भर हैं क्योंकि उनमें अपना प्रकाश नहीं है। प्राचीन आर्यहिन्दू भी इसी मत को मानते थे। संसार के सभी विद्वान् सर्वसम्मति से वेद को संसार की प्रथम तथा प्राचीनतम पुस्तक मानते हैं। ऋग्वेद [७. ५—८१] में लिखा है कि '**उदुस्रिया: सृजते सूर्य: स चां उद्यन्त-**

क्षत्रमर्चिवत् । तवेदुपो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि' अर्थात् सूर्य के तेज से ही चन्द्रादि ग्रह देदीप्यमान होते हैं । सम्भवतः इसी कारण ऋग्वेद (१. ८—११५) में **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** 'सूर्य चराचर की आत्मा (प्राण) है', इसी तेजस्वरूप रवि की ओर संकेत है । **'सूर्यो ज्योतिः ज्योतिः सूर्यः'** आदि श्रुतिवचन स्पश्ट रूप से कहते हैं कि सूर्य ही प्रकाशमय है और इसी की ज्योति से ग्रहादि देदीप्यमान होते हैं । पाणिनि ऋषि ने भी अष्टाध्यायी [१—१६] में लिखा है कि **'सोमो गौरी अधिश्रितः'** अर्थात् चन्द्रमा सूर्य के तेज पर आश्रित है । इन प्रमाणों से सिद्ध हुआ कि सूर्य ही ज्योतिपुंज है और शेष ग्रह सूर्य से ही ज्योति ग्रहण करते हैं । इसलिए पाठकगण स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि सूर्यस्थित राशि में प्रवेश करने वाला अथवा प्रविष्ट हुआ ग्रह (राहु और केतु के अतिरिक्त) सूर्य के तेज से आच्छादित होकर निस्तेज हो जाता है । अतः आचार्य ने श्लोक ६९ के दूसरे भाग में सूर्यराशि से संयोग करने वाले ग्रह की 'विरश्मि' संज्ञा जो कही है वह युक्तियुक्त तथा आधुनिक विज्ञान के नियमों के अनुकूल ही है । विदित हो कि केवल सूर्य से संयोग करने के कारण ही ग्रह अस्त नहीं हो जाता । चन्द्रादि ग्रह उस समय अस्त गिने जाते हैं जब इनका अन्तर सूर्य से क्रमशः १२, १७, १४, १२, ११, १० अंश के अन्तर्गत हो ॥६७—६८—६९॥

अब विनष्टग्रह के वश से द्वादशभावों का फलादेश लिखते हैं—

लग्नाधिपे विनष्टे स्याद्विनष्टावयवः पुमान् ।
विनष्टजातिवर्णश्च शुभाकारो विपर्यये ॥७० ॥
एवं धनादिस्थानेषु विनष्टेऽधिपतौ वदेत् ।
धनभावभ्रातृभावप्रमुखान् प्रत्ययान् सुधीः ॥७१॥

अर्थ—लग्नेश के 'विनष्ट' होने पर मनुष्य अंग, जाति, वर्ण

आदि से विनष्ट होता है, यदि विपरीत (उलट) हो तो शुभ आकार वाला होता है ।।७०।। इसी प्रकार बुद्धिमान् धनादि भावों में स्वामी के विनष्ट होने पर कहे । धन, भ्रातृ आदि भावों में धन और भ्रातृ-सम्बन्धी और इसी प्रकार शेष भाव सम्बन्धी फल कहे ।।७१।।

व्याख्या-—आचार्य ने सर्वप्रथम तीन श्लोकों द्वारा चार प्रकार की विनष्ट संज्ञा कही है। इन दो श्लोकों की सहायता से आचार्य ने द्वादशभावों में से जिस जिस भाव का स्वामी विनष्ट है उस उस भाव का नाश, उपद्रव, वक्रता, क्लेश आदि फल माना है । यदि लग्नेश अर्थात् शरीर का स्वामी विनष्ट है तो शरीर रोग वा दोषों से युक्त, अंगहीन, क्लेशित, कुरूप, कान्तिरहित होता है और नीच जाति के दोषों से युक्त तथा अल्पायु भी हो सकता है । यदि इसके विपरीत हो अर्थात् बली लग्नेश लग्न को देखता हो, वा लग्न में युत् हो वा शुभग्रहों की युति वा दृष्टि सहित हो तो नीरोग शरीर, दीर्घायु, सौम्याकृति, गौरवर्ण, दोषहीन, क्लेशरहित एवं पुष्ट और शुभलक्षणों वाला शरीर होता है । इसी प्रकार धन, भ्रातृ, क्षेत्र, पुत्रादि भावों में जानना चाहिये । अर्थात् धनसम्बन्धी प्रश्न में यदि धनेश विनष्ट हो तो धन नाश, भ्रातृसम्बन्धी प्रश्न में यदि भ्रातृभाव [तीसरे घर] का स्वामी विनष्ट हो तो भ्रातृसुखहीन या भ्रातृनाश, गर्भ प्रश्न में यदि पंचमेश विनष्ट हो तो गर्भनाश, पुत्र-प्रश्न में यदि पुत्रेश (पंचमेश) नष्ट हो तो पुत्रनाश, स्त्री-सम्बन्धी प्रश्न में यदि सप्तमेश विनष्ट हो तो स्त्री नाश, पितृ-सम्बन्धी प्रश्न में यदि दशमेश विनष्ट हो तो पितृनाश, मातृ-सुख-क्षेत्रादि प्रश्न में यदि चतुर्थेश विनष्ट हो तो मातृसुख हीन, क्षेत्र, पशु, सवारी आदि का नाश कहना चाहिए । इसी प्रकार जन्मकुण्डली, वर्षकुण्डली में भी जिस भाव का स्वामी विनष्ट हो उस का नाश कहना चाहिए ।।७०-७१।।

इति विनष्टग्रहविचारद्वारम् ।।१०।।

अब आचार्य तीन श्लोकों द्वारा चार प्रकार के कार्यसिद्धि-दायक राजयोगों को कहते हैं—

आद्यो लग्नपतिः कार्ये लग्ने कार्याधिपो यदि।
द्वितीयो लग्नपो लग्ने कार्ये कार्याधिपो भवेत् ॥७२॥

लग्नपः कार्यपश्चापि लग्ने यदि तृतीयकः।
चतुर्थः कार्यगौ स्यातां यदि लग्नपकार्यपौ ॥७३॥
चतुर्षु तूभयत्रापि चन्द्रदृग्दर्शनं मिथः।
कार्यसिद्धिस्तदा ज्ञेया मित्रे चेदधिकं शुभम् ॥७४॥

अर्थ--यदि लग्नेश कार्यभाव में और कार्येश लग्नभाव में हो तो पहला योग; और यदि लग्नेश लग्न में तथा कार्येश कार्यभाव में हो तो यह दूसरा योग हुआ ॥७२॥

यदि लग्नेश और कार्येश लग्न में हों तो तीसरा योग; तथा यदि लग्नेश और कार्येश दोनों कार्यभाव में हों तो यह चौथा योग हुआ ॥७३॥ किन्तु इन चारों योगों में दोनों [लग्नेश और कार्येश] पर पारस्परिक चन्द्रमा की दृष्टि हो तब कार्य की सिद्धि जाननी चाहिये, और यदि चन्द्रमा मित्रक्षेत्र में हो तो और भी अधिक शुभ जानना ॥७४॥

व्याख्या—श्लोक ६० और ६१ में आचार्य ने लग्नेश और कार्येश के पारस्परिक दृष्टि सम्बन्ध के आधार पर पूर्ण कार्यसिद्धि के तीन योगों का वर्णन किया था। अब इन श्लोकों में आचार्य लग्नेश और कार्येश की पारस्परिक स्थितिसम्बन्ध पर आधारित चार योगों पर प्रकाश डालते हैं। श्लोक ५९ की टीका में हम बता चुके हैं कि जिस भाव-सम्बन्धी प्रश्न हो उसे कार्यभाव कहा जाता है। उदाहरणार्थ, श्लोक ६०—६१ की टीका में दी गई प्रश्नकुण्डली में यदि कोई प्रश्न करे कि मेरे भाग्य का उदय होगा या नहीं, तो भाग्यभाव [नवमस्थान] को हम कार्यभाव की संज्ञा देंगे, और भाग्येश

को कार्येश कहेंगे। अब पहले योग के अनुसार इस प्रश्नकुंडली में लग्नेश बृहस्पति कार्यभाव [भाग्यभाव] में सिंहराशि में है, और कार्येश [भाग्येश] सूर्य लग्न में धनुराशि में है। इस लिये भाग्य की वृद्धि अवश्य होगी। यद्यपि इस प्रश्नकुंडली में चन्द्रमा का लग्नेश या कार्येश से कोई सम्बन्ध नहीं, तथापि भाग्यभाव में स्थित गुरु पूर्ण दृष्टि से लग्नवर्ती भाग्येश सूर्य को देख रहा है, और सूर्य भी शुभग्रह बुध से युक्त है अतः इसी कारण भाग्य की सिद्धि अनिवार्य है।

दूसरा योग

अब सिंह प्रश्नलग्न वाली सामने दी गई कुंडली में लग्नेश सूर्य लग्नस्थित है और पंचमेश बृहस्पति पंचमस्थ [कार्यभाव] में है और उसपर लाभभाव स्थितषि मिथुन-राशिगत चन्द्रमा की पूर्णदृरट है। अतः दूसरे योग के अनुसा हम कहेंगे कि प्रश्नकर्त्ता का पुत्र प्रप्ति होगी अथवा सन्तान सुख होगा।
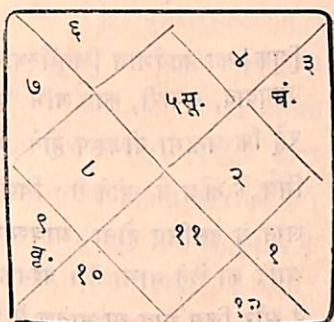
तीसरा योग

अब हम तीसरे योग का उदाहरण लिखते हैं। मान लो किसी प्रश्नकर्त्ता ने सामने दी गई वृश्चिक लग्न वाली कुंडली में स्त्री सम्बन्धी प्रश्न किया। यहां लग्नेश मंगल, सप्तमेश शुक्र के साथ लग्न में स्थित है और लग्न पर सप्तमस्थ चन्द्रमा की पूर्ण दृष्टि भी है। सो तीसरे योग के अनुसार लग्नेश मंगल और कार्येश शुक्र दोनों लग्न में हैं और चन्द्रमा से दृष्ट होने के कारण स्त्रीप्राप्ति के योग कारक हैं।
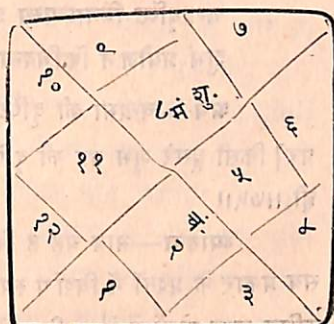
चौथा योग

अब चौथे योग का उदाहरण दिया जाता है । किसी व्यक्ति ने कर्क लग्न में गृह, क्षेत्र, यान सम्बन्धी प्रश्न किया । चतुर्थेश [कार्येश] शुक्र तुला राशि [कार्यभाव] में लग्नेश चन्द्रमा के साथ युक्त है। अतः लग्नेश [चन्द्रमा] और कार्येश [शुक्र] का कार्यभाव [चतुर्थस्थान] में मेल होने से गृह, क्षेत्र, जमीन जायदाद, सवारी, का लाभ होना निश्चित किया गया। पर स्मरण रहे कि चन्द्रमा बीजरूप होने के कारण विशेष महत्त्व रखता है और मित्र के क्षेत्र में होने से विशेष फलदायक है । कार्येश का सम्बन्ध लग्न से इसलिए होना आवश्यक है कि लग्नेश अथवा लग्न सुख आदि का लेने वाला है। प्रश्नकर्त्ता का लग्न और लग्नेश से सम्बन्ध है और जिस भाव या भावेश से उसका सम्बन्ध है उस भाव सम्बन्धी सुख उसे प्राप्त होने में सन्देह ही क्या है ॥७२-७३-७४॥
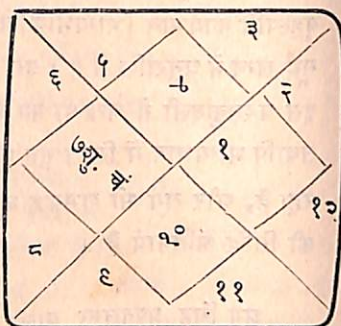
चन्द्रदृष्टि विनाऽन्यस्य शुभस्य यदि दृग्भवेत् ।
शुभं प्रयोजनं किंचिदन्यदुत्पद्यते तदा ॥७५॥

अर्थ—चन्द्रमा की दृष्टि के बिना यदि [लग्नेश वा कार्येश पर] किसी दूसरे शुभ ग्रह की दृष्टि हा तो कोई और प्रयोजन उत्पन्न हो ॥७५॥

व्याख्या—भाव यह है कि चन्द्रमा बीजरूप होने के कारण सब प्रकार के प्रश्नों में विशेष स्थान रखता है । पिछले श्लोकों द्वारा कथित चार योगों में से यदि कोई याग मिलता हो, किन्तु लग्नेश

अथवा कार्येश पर चन्द्रमा की दृष्टि न हो, पर किसी और शुभ की दृष्टि हो तो कार्य की सिद्धि तो होगी पर जिस कार्य सम्बन्धी चिन्ता प्रश्नकर्त्ता के मन में है, उसकी सिद्धि न होकर किसी और काम की सिद्धि होगी। सारांश यह कि प्रश्नकर्त्ता के कार्य सम्बन्धी कोई नई योजना बनेगी अथवा चिंतित कार्य के अतिरिक्त कोई और नया कार्य सिद्ध होगा। ऋग्वेद [१०—९०, १३] में चन्द्रमा की उत्पत्ति विराट्पुरुष के मन से की गई बताई गई है—**चन्द्रमा मनसो जातः**। एतरेय अरण्यक [२. ४. १], वृहदारण्यकोपनिषद् [१. ३. १६ तथा ३. २. १३] आदि ग्रन्थों में भी यही माना गया है। भाव यह है कि चन्द्रमा सृष्टिमात्र के मनों पर प्रभाव डालता है। मनोविज्ञानशास्त्र मानता है कि किसी कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए मन की स्थिरता एवं संलग्न का होना आवश्यक है। यही कारण है कि ज्योतिषशास्त्र में भी मनोवाञ्छित कार्य का सिद्धि के हेतु चन्द्रमा [विराट् मन] का सम्बन्ध अनिवार्य माना गया है ॥७५॥

राजयोगा अमी ख्यातास्चत्वारोऽपि महाबलाः।
अत्रैव दृष्टियोगेन सामान्येन फलं स्मृतम् ॥७६॥

अर्थ—ये चारों महा वलवान् राजयोग प्रसिद्ध हैं और इन के सम्बन्ध में भी दृष्टियोग के साम्य से फल कहा गया है ॥७६॥

व्याख्या—यद्यपि आचार्य ने यहां चार प्रधान योग [राजयोग] कहे हैं तथापि शुभग्रहों के **योग** वा दृष्टि से शुभफल और पाप ग्रहों के योग या दृष्टि से पापफल वाले अनेक योग समझने चाहिएं। अर्थात् यदि लग्नेश अथवा कार्येश का शुभग्रह से युति वा दृष्टि सम्बन्ध है तो शुभफलदायक, और यदि पापग्रह से युति या दृष्टि सम्बन्ध है तो अशुभफलदायक योग जानना चाहिए। इसी प्रकार चन्द्रमा यदि मित्र के द्रेष्काण, सप्तांश, नवांश, द्वादशांश, त्रिशांश

में होकर लग्नेश या कार्येश को देखे तो विशष कार्य सिद्ध हाता है, और शत्रु, नीच वर्ग में हो तो अल्प कार्य की सिद्धि होती है। पर यदि लग्नेश और कार्येश का न तो स्थान सम्बन्ध हो, न ही व्यत्यात् स्थानान्तर सम्बन्ध हो तो कार्य की सिद्धि नहीं होगी ऐसा समझना चाहिए ।।७६।।

अर्धयोगो विनिर्दिष्टः परस्परदृशं विना ।

चन्द्रदृष्टि विना ज्ञेयं शुभं पादफलं बुधैः ।।७७।।

अर्थ—यदि इन [लग्नेश और कार्येश] की परस्पर दृष्टि न हो ता आधा योग होता है, और यदि इन पर चन्द्रमा की दृष्टि न हो तो चतुर्थांश फल बुद्धिमान् जाने ।।७७।।

परस्परं विषमता चन्द्रयोगो भवेद् यदि ।

तदाऽर्धफलमादिष्टं प्रपंचोऽयं मतो मम ।।७८।।

अर्थ—यदि इन दोनों [लग्नेश और कार्येश] में परस्पर शत्रुता हो पर चन्द्रमा से युक्त हो तो आधा फल कहा गया है, यह प्रपंच हमारे मतानुसार है ।।७८।।

व्याख्या—यहां आचार्य ने स्पष्ट किया है कि यदि लग्नेश और कार्येश आपस में शत्रु हों, पर चन्द्रमा का योग हो तो आधा फल समझो। यह आचार्य का अपना मत है, अन्य शास्त्रकारों का यह मत नहीं है। यहां पर आचार्य ने चन्द्रमा को विशेष स्थान देते हुए उसके महत्त्व पर प्रकाश डाला है कि यदि लग्नेश और कार्येश में शत्रुता हो तो चन्द्रमा के योगमात्र से ही आधा फल मिलता है। पर हमारे विचार में लग्नेश और कार्येश में विरोधता होने के कारण और चन्द्रमा के संयोग से चाहे कार्य की न्यूनाधिक सिद्धि हो, पर प्रश्नकर्त्ता को उस कार्य में विरोधता होती रहेगी अथवा उसका मन उस कार्य से घृणित रहेगा।

उदाहरण—सिंह लग्न में किसी व्यक्ति ने राजदरबार सम्बन्धी प्रश्न किया । सिंह लग्न में कार्येश [दशमेश] शुक्र, चन्द्रमा और सूर्य के साथ है, अर्थात् लग्नेश और कार्येश का लग्न में सम्बन्ध है और साथ ही चन्द्रमा का भी युतिसम्बन्ध है। सो यह राजयोग कार्यसिद्धि का देने वाला है। परन्तु कार्येश शुक्र का लग्नेश सूर्य से वैर-विरोध है [श्लोक १५] । इस लिए नौकरी आदि मिलते समय किसी अफसर द्वारा विरोध होगा जिसके फलस्वरूप उस नौकरी के स्थान पर कोई घटिया नौकरी मिले जिस से प्रश्नकर्त्ता असंतुष्ट रहे । यदि इसी लग्न में प्रश्नकर्त्ता यह पूछे कि क्या मैं दोबारा बहाल होने के बाद उसी स्थान वा ग्रेड में नियुक्त हूंगा, तो कहना चाहिये कि यद्यपि तुम बहाल हो जाओगे तथापि तुम्हें कोई न्यून स्थान पर लगाया जावेगा जिस से तुम्हारी आय आधी रह जायेगी । तथा बाद में भी अफसरों की ओर से विरोध जारी रहेगा, इत्यादि । इसी प्रकार लाभादि प्रश्नों में यदि लग्नेश और कार्येश में शत्रुता हो किन्तु चन्द्रमा की लाभ में या लग्न में युति हो तो आधा लाभ होगा ॥७८॥
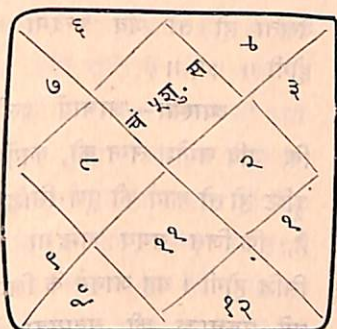
इति राजयोगद्वारम् ॥११॥

अब आचार्य कार्यविधिज्ञान तथा लाभादिज्ञान पर प्रकाश डालते हैं—

लग्नेशो वीक्षते लग्नं कार्येशः कार्यमीक्षते ।
कार्यसिद्धिर्भवेदिदुः कार्यमेति परं यदा ॥ ७९ ॥

अर्थ—लग्नेश लग्न को देखता हो और कार्येश कार्यभाव को

देखता हो तो जब चन्द्रमा कार्यभाव पर आवे तब कार्य को सिद्धि होगी ।। ७९ ।।

व्याख्या--आचार्य श्लोक ६० और ६१ में बता चुके हैं कि यदि लग्नेश लग्न को, कार्येश कार्यभाव को देखे और चन्द्रमा की भी दृष्टि हो तो कार्य की पूर्ण सिद्धि होती है। इस श्लोक में बताया गया है, कि जिस समय चन्द्रमा कार्यभाव पर आवे उस समय कार्य की सिद्धि होगी। यह जानने के लिए कि चन्द्रमा कार्यभाव पर कब आवेगा, हमें पञ्चाङ्ग की सहायता लेनी पड़ती है। हां, साधारण नियम यह है कि चन्द्रमा एक राशि में केवल सवा दो दिन रहता है और सत्ताईस दिनों में राशिचक्र के गिर्द घूम जाता है। चूंकि यह योग शीघ्र कार्य की सिद्धि बारे है इसलिए शीघ्र कार्यसिद्धि की अधिक-से-अधिक अवधि २७ दिन हो सकती है। सवा दो दिन प्रति राशि के हिसाब से हम अनुमान लगाकर भी बताने में समर्थ हो जाते हैं कि चन्द्रमा कब कार्यभाव पर आवेगा।

उदाहरण—किसी ने सामने दी गई प्रश्न कुंडली के अनुसार धनु लग्न में भाग्योदय सम्बन्धी प्रश्न किया। प्रश्न कुंडली में लग्नेश गुरु पंचभाव में स्थित होकर लग्न को देख रहा है, और तृीतयस्थ सूर्य भाग्येश हो कर भाग्यभाव [नवमस्थान] को देख रहा है। सो
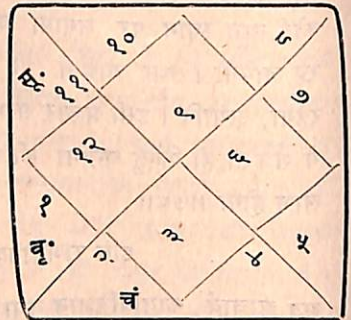
सिद्ध हुआ कि शीघ्र ही भाग्योदय होगा। अब विशेष प्रश्न यह है कि भाग्योदय कब होगा? चन्द्रमा षष्ट भाव में बृषराशिगत है। जब चन्द्रमा सिंहराशि [नवम, कार्यभाव, भाग्य स्थान] पर आवेगा,

तब भाग्य का उदय होगा। यदि चन्द्रमा को वृषराशि में आये एक दिन हुआ हो तो सवा दिन चन्द्रमा इसी राशि में रहेगा, सवा दो दिन मिथुन राशि में और सवा दो दिन ही कर्क राशि में चन्द्रमा वास करेगा। तीनों का योग पौने छः दिन हुआ। सो हम कहेंगे कि भाग्योदय छः दिन तक होगा। सिंह राशि पर चन्द्रमा सवा दो दिन रहेगा, अतः प्रश्न काल से ६ और ८ दिन के भीतर भाग्य का उदय होगा। स्मरण रहे कि प्रश्न कुंडली में लग्नेश गुरु की कार्यभाव [भाग्यस्थान] पर भी दृष्टि है। इसी प्रकार अन्य भावों में भी देखना चाहिए ॥ ७९ ॥

लाभ के समय का विशेष निर्णय करते हुए आचार्य लिखते हैं—

लग्नाधिपतिर्लुब्धो लाभाधीशश्च दायको भवति।
लग्नाधिपस्य योगो लाभाधीशेन लाभकरः ॥८० ॥
भवति परं लाभकरस्तदैव यदि भवति चन्द्रदृग्लाभे।
योगाः सर्वेऽप्यफलाश्चन्द्रमृते व्यक्तमेवैतत् ॥ ८१ ॥

अर्थ—लग्नेश लेने वाला [ग्राहक] होता है और लाभेश देने वाला [दायक] होता है। (अतः) लग्नेश का लाभेश के साथ जब मेल हो तो लाभ होता है ॥ ८० ॥

परन्तु [लग्नेश और लाभेश का मेल] तभी लाभकारक होता है जब लाभभाव पर चन्द्रमा की दृष्टि हो। यह स्पष्ट ही है कि चन्द्रमा के विना सभी योग विफल होते है ॥ ८१ ॥

व्याख्या—पीछे कहा गया है कि लग्नभाव और कार्यभाव, लग्नेश और कार्येश के युति, दृष्टि, स्थानान्तर आदि सम्बन्ध मात्र से ही कार्य की सिद्धि होती है कौर विशेषतः चन्द्रमा के संयोग और दर्शन से। इसी नियम के अनुसार ही लग्नेश और लाभेश की पारस्परिक युति, दृष्टि, स्थानदि सम्बन्ध मात्र से ही लाभ का योग

बनता है और चन्द्रमा का यदि सम्बन्ध हो तो विशेष योग कारक है। दैवज्ञ रामकृष्ण भी अपनी प्रसिद्ध रचना प्रश्न—चण्डेश्वर [२—४. ५. ६] में इसी नियम की पुष्टि करते हुए लिखते हैं :—

लग्नलाभपती लग्ने लाभे वा लग्नलाभपौ ।
लग्ने लाभाधिपो वाऽपि लाभे लग्नाधिपो भवेत् ॥
एकोऽपीह यदा योगस्तदा लाभं सुनिश्चितम् ।
चन्द्रयोगे विशेषेण लाभः स्वामिस्वरूपतः ॥
लग्नलाभपर्योदृष्टिलाभे लाभकरी मता ।
लाभः सर्वखगैर्दृष्टो लाभः पूर्णो भवेत्तदा ॥

अर्थात् "लग्नेश और लाभेश लग्न में हों, या लग्नेश और लाभेश लाभभाव में हों, या लाभेश लग्न में किंवा लग्नेश लाभ में हो, इन में से एक भी योग हो तो लाभ निश्चय से हो। चन्द्रमा योग कर्त्ता हो तो विशेष लाभ हो। यह लाभ लाभेश के स्वरूप के अनुसार होता है। लग्नेश और लाभेश दोनों की लाभभाव पर दृष्टि भी लामकारी होती है। लाभभाव पर संपूर्ण शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो भी लाभ होता है।"

लाभप्रश्न में लाभ कब होगा, इस का निश्चय करते हुए आचार्य ने कहा है कि लग्नेश और लाभेश का जब मिलाप हो तब लाभ होगा। लग्नेश और लाभेश का मिलाप जानने के लिए हमें पंचांग की सहायता लेनी पड़ेगी। पर लाभ तभी होता है जब लाभ भाव पर चन्द्रमा की दृष्टि हो अथवा युति हो।

यद्यपि इन श्लोकों में लाभभाव का अर्थ एकादशभाव लिया जाता है तथापि इसका अर्थ अन्य भावों के साथ भी जोड़ा जा सकता है। उदाहरणार्थ, धनलाभ प्रश्न में यदि धनेश और लग्नेश धनभाव में हों, या धनेश लग्नभाव में और लग्नेश धनभाव में हो और इन योगों में चन्द्रमा की भी दृष्टि हो तो धनलाभ अवश्य होता

है। इसी तरह धनेश और लग्नेश एक दूसरे को देखें, अथवा धनेश लग्न को या लग्नेश धनभाव को देखे और चन्द्रमा की दृष्टि हो तो भी धनलाभ समझना। पर लाभ तब होगा जब लग्नेश और धनेश का मिलाप हो। इसी प्रकार लग्न अथवा लग्नेश का चतुर्थभाव या चतुर्थभावेश के साथ युति दृष्टि सम्बन्ध होने और चन्द्रमा के संयोग से लग्नेश और चतुर्थेश के मेल होने पर क्षेत्र, जायदाद, मकान, सवारी, पशु, सुखादि का लाभ होगा। इसी प्रकार पंचम-भाव, सप्तम भाव, दशमभाव आदि के सम्बन्ध होने से पुत्र लाभ, स्त्रीलाभ, राज्यलाभ आदि का निश्चय करे। आगामी दो श्लोकों में आचार्य ने इसी मत की पुष्टि की है॥ ८०—८१॥

पण्याधीशेनैवं कर्मेशेनैव निवृत्त्यधीशेन।
मृत्युपतिना च योगो लग्नाधीशस्य वक्तव्यः॥ ८२॥
तत्तत्स्थानेक्षणतः पण्यविवृद्धिः कर्मवृद्धिश्च।
बिबुधैस्तदा निवृत्तिमृत्वोर्भावः परेऽप्येवम्॥ ८३॥

अर्थ—इसी प्रकार पण्याधीश [लाभेश, एकादशेश], कर्मेश [दशमेश], निवृत्त्यधीश [सप्तमेश] और मृत्युपति [अष्टमेश] से यदि लग्नेश का योग हो और उन्हीं स्थानों पर उन्हीं भावेशों की दृष्टि हो तो क्रमशः पण्य [क्रयाणक] की बृद्धि, कर्म [राज्य, व्यापार, नौकरी] की वृद्धि, निवृत्ति [लौटना] और मृत्यु आदि भावफल पंडित कहें। इसी रीति से अन्य भावों पर विचार करे॥ ८२-८३॥

व्याख्या—भाव यह है कि पण्याधीश [एकादशेश] का लग्नेश से जब मेल हो तो पण्य का लाभ, कर्मेश से मेल होने पर राज्य [व्यापार, नौकरी] लाभ, मृत्मुपति [अष्टमेश] से मेल होने पर मृत्युलाभ, और सप्तमेश से मेल होने पर प्रवासी का लौटना आदि

कहें। इनमें भी चन्द्रमा का दृष्टि आवश्यक है। निवृत्ति का अर्थ है लौटना और इसका विचार सप्तम भाव से किया जाता है। षट्पञ्चाशिका (१. २) में भी लिखा है कि **"अस्तमयान्निवृत्तिः"** अर्थात् "सप्तम स्थान से निवृत्ति का विचार करे"। यहां निवृत्ति के अर्थ केवल प्रवासी के लौटने आदि से ही नहीं किन्तु कष्ट की निवृत्ति, गई वस्तु की निवृत्ति, चिट्ठी, तार आदि के आने के भी हैं। इसी रीति से अन्य भावों का विचार करना चाहिए॥ ८२—८३॥

इति लाभालाभविचारद्वारम्॥ १२॥

अब आचार्य लग्नेश की त्रिक स्थान [६—८—१२] में स्थिति के वश से फल का कथन करते हैं—

लग्नेशो यदि षष्ठे स्वयमेव रिपुस्तदा भवत्यात्मा।
मृत्युकृदष्टमगोऽसौ, व्ययगः सततं व्ययं कुरुते॥ ८४॥

अर्थ—यदि लग्नेश षष्टस्थान [रिपुभाव] में हो तो अपने आप ही कार्य का रिपु [कार्यनाशक] बनता है, और अष्टमस्थान [मृत्युकारक], और बारहवें [व्ययभाव] में हो तो लगातार खर्च कराता है॥ ८४॥

व्याख्या—यहां लग्न के पति के त्रिक स्थान में जाने से कार्यनाश का ग्रहण किया गया है। छटे, आठवें और बारहवें भाव की त्रिक संज्ञा मानी गई है। **"यद्भावनाथो रिपुरन्ध्ररिष्फे तद्भावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञः"** के सर्वमान्य सिद्धान्त के अनुसार जिस भाव का स्वामी छटे, आठवें और बारहवें स्थान में हो उस भाव का नाश होता है। अतः आचार्य ने यहां ठीक ही कहा है कि यदि प्रश्न लग्न में लग्नेश शत्रुस्थान [छटे स्थान] में हो तो अपनी शत्रुता द्वारा कार्य का नाश होता है। लग्नेश प्रश्नकर्त्ता है और छटा स्थान [रिपुभाव] शत्रुस्थान है अतः प्रश्नकर्त्ता स्वयं ही कार्य के नाश का कारण होता है। अर्थात् वह अपने पांव पर आप

कुल्हाड़ा मारता है, अपनी ग़लती से काम बिगाड़ लेता है। अष्टमस्थान को मृत्यु तथा नाशभाव कहा गया है अतः लग्नेश के अष्टमस्थान में जाने से कार्य की मृत्यु अथवा कार्यनाश होना युक्तिसंगत है। इसी प्रकार प्रश्नकर्त्ता की मृत्यु होने से भा कार्यनाश की सम्भावना हो सकती है। यहां मृत्युशब्द से शरीरान्त न ग्रहण करते हुए व्यथा, भय, दुःख, लज्जा, रोग, शोक, बन्धन [क़ैद], अवमान, आदि समझना चाहिए। अर्थात व्यथा, शोक, रोग, आदि कार्यनाश के कारण बन सकते हैं। बारहवें भाव को व्ययभाव अर्थात् ख़र्च का स्थान कहा गया है। अतः प्रश्न लग्नेश के व्ययभाव में जाने से प्रश्नकर्त्ता के कार्य का नाश तो होता है किन्तु इसके अतिरिक्त निरन्तर ख़र्च भी होता है। यहां भी विशेष यह है कि यदि लग्नेश पापीग्रह हो तो पाप कर्मों और शुभग्रह हो तो सन्मार्ग अथवा शुभ कार्य पर ख़र्च होता है ।।८४।।

लग्नस्थं चन्द्रजं चन्द्रः क्रूरो वा यदि पश्यति ।
धनलाभो भवेदाशु किन्त्वनर्थोऽपि दृष्यते ।। ८५ ।।

अर्थ—यदि लग्नभाव में स्थित बुध को चन्द्रमा या पापीग्रह देखे तो शीघ्र धन का लाभ हो किन्तु अनर्थ भी दीख पड़ता है ।। ८५ ।।

व्याख्या—यहां विशेष योग लिखते हैं। श्लोक १६ में आचार्य बता चुके हैं कि "**हिमांशुबुधयोर्वैरम्**" अर्थात् "चन्द्रमा और बुध का वैर है।" बुध नपुंसक ग्रह है अतः शुभग्रह से युक्तदृष्ट होने से शुभफलदायक और पापग्रह से युक्त या दृष्ट होने से पापफलप्रद है। इसलिए लग्नवर्ती बुध को यदि चन्द्रमा या पापीग्रह देखे तो धन का लाभ होने के पश्चात् कोई अनर्थ, उपद्रव, भयावही यात्रा, बन्धन, मुकद्दमा, मृत्यु, शोक, रोगादि की सम्भावना हो सकती है। स्मरण रहे कि लग्नवर्ती बुध को चन्द्रमा पूर्ण दृष्टि से तभी देख

सकता है यदि चन्द्रमा सप्तम स्थान में स्थित हो ॥ ८५ ॥

चंद्रो लग्नपतिर्वाऽपि यदि केन्द्रे शुभाः स्थिताः ।
किंवदंती तदा सत्या स्यादसत्या विपर्यये ॥ ८६ ॥

अर्थ—चन्द्रमा, या लग्नेश या शुभग्रह यदि केन्द्र—भाव [१—४ -७ -१०] में हों तो किम्वदन्ती [अफ़वाह] ठीक है और यदि विपरीत हो तो मिथ्या जाननी ॥ ८६ ॥

व्याख्या - यदि प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करे कि मैं अमुक बात सुना है या अमुक अफ़वाह सुना है तो क्या यह सत्य है या मिथ्या तो उस का उत्तर इस प्रकार देना चाहिए। चन्द्रमा, लग्नेश या शुभग्रह यदि केन्द्र अर्थात् लग्न, चतुर्थ, सप्तम, दशम भावों में से किसी एक भाव में हो तो वार्ता ठीक है। यदि चन्द्रमा या लग्नेश केन्द्र में न हो और पापग्रह केन्द्र में हों तो वार्ता मिथ्या है, ऐसा कहना चाहिए ॥ ८६ ॥

इति लग्नेशस्थितिद्वारम् ॥ १३ ॥

गर्भ प्रश्न में आचार्य गर्भ की कुशलता आदि पर विचार करते हैं—

क्षेमप्रश्ने च गर्भस्य गर्भं गर्भाधिपो भवेत् ।
न पश्यति ग्रहः क्रूरस्तत्र चास्ति च्युतिस्तदा ॥ ८७ ॥

अर्थ--गर्भ के क्षेमप्रश्न में यदि गर्भ का स्वामी [पंचमेश] गर्भ —भाव [पंचमस्थान] को न देखे और पापग्रह पंचमभाव में स्थित हो या पंचमभाव को देखे तो गर्भपात होगा ॥ ८७ ॥

व्याख्या—यदि कोई प्रश्न करे कि मेरी स्त्री गर्भवती है: "क्या गर्भ का कुशल है या नहीं ?" तो इस प्रश्न में यदि पापग्रह पांचवें भाव में हो या पंचम भाव को पाप ग्रह देखता हो, और पंचमेश की दृष्टि पंचम भाव पर न हो तो कहना चाहिए कि गर्भपात होगा अर्थात् गर्भ का कुशल या कल्याण नहीं होगा। इसके विपरीत

यदि पाँचवें स्थान में शुभग्रह हो और पंचम भाव शुभग्रह या पंचमेश से युत् वा दृष्ट हो तो गर्भ का कुशल कहना चाहिए। कई आचार्यों का मत है कि यदि लग्नेश और चन्द्रमा पापी या वक्रीग्रह से यत् या दृष्ट हो तो भी गर्भ गिर जाता है। और यदि पंचमेश और लग्नेश दोनों अष्टमभाव में स्थित हों तो उतने ही गर्भ या सन्तान नष्ट होंगे जितने ग्रह लग्नेश और पंचमेश के साथ अष्टमभाव में स्थित होंगे। इसी प्रकार कई आचार्यों के मतानुसार यदि चन्द्रमा अथवा द्वादश भाव का पति केन्द्र स्थान में शुभदृष्ट हो तो गर्भ सुख-पूर्वक स्थित रहता है। यदि पांचवें स्थान पर पापग्रहों का संयोग या दृष्टि हो और बृहस्पति [पुत्रकारक] की दृष्टि न हो, तो गर्भस्राव, गर्भपात आदि फल कहे। यदि पंचमेश अस्त या नीच हो या पापग्रह से पीड़ित हो तो गर्भपात या मृतपुत्र का जन्म होता है, और यदि पुत्र पैदा भी हो जावे तो दैवात् मर जाता है। पराशर ऋषि कहता है—"**भौमेण राहुणा वाऽपि युक्तो स्यात्पंचमेश्वरः। नापत्यं जायते देव जातोऽपि म्रियते शिशुः।**" अर्थात् "यदि पंचमेश मङ्गल या राहु से युक्त हो तो सन्तान नहीं होती और यदि हो भी जाए तो शिशु का मरण होता है।" लेखक ने यह योग कई बार आज़माया है और इसकी सत्यता सिद्ध की है। लेखक का अनुभव-सिद्ध विचार यह भी है कि यदि धनुराशि का राहु पंचम हो तो भी सन्तान का अथवा गर्भ का नाश होता है। पंचम और सप्तम भाव में बली क्रूरग्रह हो तो मरा हुआ लड़का पैदा होता है।

गर्भ में कन्या है या पुत्र, इस पर विचार किया जाता है। यदि लग्नेश पुत्र-भाव में हो और पंचमेश लग्न-भाव में हो और चन्द्रमा की दृष्टि हो तो निःसन्देह पुत्र का जन्म हो। प्रश्नकाल

में यदि लग्नेश और पंचमेश अपने अपने उच्चस्थान में हो और दोनों में परस्पर दृष्टि हों तो भी पुत्र की उत्पत्ति होती है। यदि शुक्र और चन्द्र पांचवें हों तो कन्या होती है। यदि शुक्र और चन्द्र दोनों पंचमभाव को देखें तो पुत्र होता है। **नोट**—शुक्र और चन्द्रमा उसी अवस्था में पंचम भाव को देख सकते हैं यदि वे दोनों लाभभाव [एकादश स्थान] में स्थित हों। और यदि शुक्र और चन्द्रमा नीचराशि या शत्रुराशि के हों तो गर्भ के लिए हानिप्रद हैं। यदि प्रश्नलग्नेश और पंचमेश दोनों पुरुषराशि [१, ३, ५, ७, ९, ११] में हों तो पुत्र, और स्त्रीराशि [२, ४, ६, ८, १०, १२] में हों तो कन्या का जन्म होता है। यदि शनि बिषमराशि [१, ३, ५, ७, ९, ११] या विषमराशि के नवांश में हो तो पुत्र और समराशि या समराशि के नवांश में हो तो कन्या पैदा होती है। यदि सूर्य, चन्द्र और गुरु विषमराशि में हों और शुक्र, मंगल और चन्द्र की दृष्टि पंचमभाव पर हो तो पुत्र होता है ॥ ८७ ॥

इति गर्भक्षेमद्वारम् ॥ १४ ॥

अब गर्भिणी के प्रसव का विचार करते हैं—

अविनष्टो यदा गर्भाधिपो गर्भं निरीक्षिते ।
तदैव प्रसवो गुर्व्या नान्यथेति विनिश्चयः ॥ ८८ ॥

अर्थ—पंचमेश [गर्भ का स्वामी] जब अविनष्ट [क्रूराक्रान्त, क्रूरयुत्, क्रूरदृष्ट, अस्त आदि न हो] होकर पंचमभाव को देखता हो तब गर्भिणी का प्रसव काल निश्चय से कहना, यदि इस के विपरीत हो तो न कहना ॥ ८८ ॥

व्याख्या—भाव यह है कि यदि पंचमेश क्रूराक्रान्त, क्रूरयुत्, क्रूरदृष्ट, अस्त हो और पंचम भाव को न देखता हो तो प्रसव समय नहीं आया, यह कहना अथबा गर्भ का क्षय होगा। यदि पंचमेश

विनष्ट संज्ञक न हो और पंचम भाव को देखे तो उस समय गर्भिणी प्रसूता होगी, ऐसा कहना चाहिए। विनष्ट संज्ञा पर हम श्लोक ६७ की व्याख्या में विचार कर आए हैं ॥ ८८ ॥

इति गुर्विणीप्रसवद्वारम् ॥ १५ ॥

अब यमल योग पर विचार करते हैं—

पृच्छालग्ने च चत्वारि ग्रहयुग्मानि संति चेत् ।
यत्र तत्रैव युग्मस्य प्रसवं ब्रुवते बुधाः ॥ ८९ ॥

अर्थ—पण्डित लोग कहते हैं कि यदि प्रश्न-लग्न के समय यहां कहीं भी चार स्थानों में ग्रहों के जोड़े हों तो यमल [दो सन्तानों] का प्रसव होता है ॥ ८९ ॥

व्याख्या—भाव यह है कि प्रश्न लग्न के समय यदि चार भिन्न भिन्न स्थानों में दो दो ग्रह हों तो दो सन्तानों का जन्म होता है। यमल-जन्म बारे वराहमिहिराचार्य ने बृहज्जातक (५—४) में लिखा है कि यदि सूर्य चतुष्पदराशियों [मेष, वृष, सिंह, धनु का परार्ध और मकर का पूर्वार्ध] में से किसी एक में हो और शेष ग्रह बली हो कर द्विःस्वभाव राशियों [मिथुन, कन्या, धनु, मीन] में स्थित हों तो यमल [जोड़े] पैदा होते हैं। इसी मत की पुष्टि सारावली के रचयिता कल्याणवर्मा तथा गुणाकर और गर्गाचार्य ने की है। इस के अतिरिक्त यदि सूर्य, चन्द्र, मंगल, गुरु और शुक्र द्विःस्वभाव राशि या द्विःस्वभाव राशि के नवांश में हों और बुध से दृष्ट हों तो भी यमल योग होता है। सारावली, बृहज्जातक और लघुजातक में भी ऐसा ही लिखा है। जब इस प्रकार यमल जन्म का निश्चय हो जावे तो यह निर्धारित करना है कि यमल कन्या वा पुत्र होंगे, इत्यादि। हम ने ऊपर लिखा है कि चार राशिएँ—मिथुन, कन्या, धनु और मीन—द्विःस्वभाव हैं। इन में मिथुन और धनु

पुरुष राशिएँ हैं ग्रौर कन्या ग्रौर मीन स्त्रीराशिएँ हैं। यदि मिथुन ग्रौर घनु राशियों ग्रथवा इन के नवांशों में सूर्य ग्रौर गुरु स्थित हों ग्रौर बुध पूण दृष्टि से देखे तो दोनों यमल लड़के होते हैं। यदि कन्या ग्रौर मान राशि ग्रथवा इनके नवांशों में चन्द्रमा, शुक्र ग्रौर मंगल हों और बुध की पूर्ण दृष्टि हो तो दोनों यमल कन्याएँ होती हैं। ग्रथवा यदि द्विः स्वभाव राशि या नवांश में सूर्य चन्द्र मंगल, गुरु, शुक्र मिश्रित मिलकर स्थित हों ग्रौर बुध की पूर्ण दृष्टि हो तो यमलों में एक पुरुष और दूसरी कन्या हाती है। प्रथम कन्या होगी या पुरुष, इस प्रश्न में यदि पुरुष ग्रह बलयुक्त हो तो प्रथम पुरुष, य।द स्त्री ग्रह बली हो तो प्रथम कन्या ॥ ८९ ॥

इत्यपत्ययुग्म सवद्वारम् ॥ १६ ॥

अब गर्भ के मास की संख्याज्ञान पर विचार करते हैं—

मासज्ञानस्य पृच्छायां गर्भिण्या भृगुनन्दनः ।
लग्नात्स्याद्यतमे स्थाने मासानाख्याति तावतः ॥ ९० ॥

ग्रर्थ—प्रश्न लग्न से शुक्र जितने संख्यक स्थान पर हो उतने महीने की गर्भ की स्थिति कहनी ॥ ९० ॥

व्याख्या—शुक्र लग्न से जिस घर में हो उतने मास गर्भ के व्यतीत हुए जानना। इस में भी विशेष यह है कि यदि शुक्र नवमभाव से ग्रागे हो अर्थात् दशम, एकादश आदि भावों में हो तो पंचमभ।व से गिनन।। जैसे मेषलग्न में किसी ने प्रश्न किया कि मेरी स्त्री को कितने मास का गर्भ है, तो उस समय शुक्र षष्ठ भाव कन्या राशि के १५ ग्रंश पर है। लग्न से षष्ठ भाव तक ६ मास हुए तो हम कहेंगे कि तुम्हारी स्त्री को गर्भ का छटा मास व्यतीत हो रहा है। एक राशि में ३० ग्रंश होने से और एक राशि के ३० दिन या एक मास होने से एक ग्रंश के पीछे एक दिन ग्रहण करना चाहिए। इस

प्रकार १५ अंश शुक्र के व्यतीत होने पर १५ दिन हुए। हमें कहना चाहिए कि गर्भ हुए साढ़े पाँच मास हो गए हैं। इसी प्रकार यदि शुक्र प्रश्नकाल समय कन्या राशि का लाभभाव [एकादश स्थान] में हो तो पंचम से गिन कर कहना चाहिए कि गर्भ सप्तम मास में है और यदि कन्या राशि के १० अंश व्यतीत हुए हों तो कहना चाहिए कि गर्भ के ६ मास और दस दिन व्यतीत हो गए हैं।

प्रश्नशिरोमणि के कर्त्ता श्रीरुद्रमणि लिखते हैं कि "**तनोर्गतैर्नंदलवैर्गता: स्युर्भोग्यैश्च भोग्या इह जन्ममासा:**" अर्थात् "लग्न के जितने नवांश व्यतीत हो गये उतने ही गर्भ के मास व्यतीत और जितने नवांश भोगने में बाकी हैं उतने ही मास शेष गर्भ के हैं।" दैवज्ञ रामकृष्ण भी प्रश्न—चण्डेश्वर [७—१३] में लिखते हैं कि **लग्नस्य विगतैरंशैर्गता मासा निरुपिता:। भोग्यांशैर्भोग्यमासाश्च गर्भस्य सुप्रकल्प्यताम्।** अर्थात् प्रश्नलग्न के गतांशों से शेष मास कहे। पर श्रीजीवनाथ झा प्रश्नभूषण [६—३] में लग्नेश के भुक्त भोग्याँशों द्वारा गर्भ के भुक्त और भोग्य मासों का अनुमान लगाते हैं, यथा—**लग्नेशभुक्तभोग्यांशैर्भुक्ता भोग्या: क्रमाद्बुधै:। मासा निरुपिताश्चास्य गर्भस्य कलयादिनम्** ।। हम श्लोक ३८—३९ की व्याख्या में बता चुके हैं कि राशि के नवमें भाग को नवांश कहते हैं। एक राशि में ३० अंश होते हैं तो प्रत्येक नवांश ३ अंश २० कला अथवा २०० कला का होगा। २०० कला अर्थात् ३ अंश २० कला भोगने में एक मास लगे तो अमुक अंश भोगने में कितने मास, दिनादि लगेंगे इन का अनुमान गणित द्वारा लगाया जा सकता है। इस प्रकार गणित करके नवांशों की सहायता से भी मतान्तर द्वारा गर्भ के समय का निश्चय किया जा सकता है ।। ९० ।।

इति गर्भमाससंख्याज्ञानद्वारम् ।। १७ ।।

अब स्त्रीप्राप्ति सम्बन्धी विचार लिखते हैं—

स्थाने चतुर्थे सौम्यत्वमापन्ने ललना धृता ।
सप्तमे सौम्यतां प्राप्ते प्रष्टुः कांता विवाहिता ॥ ६१ ॥

अर्थ—यदि चतुर्थ स्थान शुभ [शुभग्रह से युत् या दृष्ट] हो तो प्रश्नकर्त्ता को धरेली [रखेली] स्त्री की प्राप्ति और यदि सप्तमभाव सौम्य [शुभग्रह से युत्दृष्ट] हो तो विवाहिता स्त्री मिलेगी ॥ ६१ ॥

व्याख्या—श्लोक ६०–६१, ७२. ७३.७४. ८० की सहायता से लग्न, कार्य, लग्नेश, कार्येश की युतिदृष्टि सम्बन्ध से विवाहादि, स्त्री-प्राप्ति आदि का निश्चय करना चाहिए। स्त्री की प्राप्ति का निश्चय होने पर कैसी स्त्री की प्राप्ति होगी, इस बात पर आचार्य ने यहां विचार किया है। आचार्य का भाव है कि यदि चतुर्थ भाव शुभत्व को प्राप्त हो अर्थात् चतुर्थभाव में शुभ राशि हो और वह शुभ ग्रह से युक्त वा दृष्ट हो तो धृताङ्गना [रखेली स्त्री] का लाभ होता है। इसी प्रकार यदि प्रश्नलग्न समय सप्तमभाव शुभत्व को प्राप्त हो तो विवाहिता स्त्री का लाभ होता है। यदि इसके विपरीत चतुर्थभाव पापराशिगत हो और वह पाप ग्रह से युक्त वा दृष्ट हो तो विवाहिता स्त्री का लाभ हो और यदि सप्तम भाव क्रूरयुत्दृष्ट हो तो धरेली स्त्री का लाभ हो। इसी भाव को अगले श्लोक में स्पष्ट करते है ॥ ९१ ॥

क्रूरिते च चतुर्थे स्यात्परिणीता नितंबिनी ।
सप्तमे क्रूरिते वा स्याद्धृतैव हि कुटुंबिनी ॥ ९२ ॥

अर्थ—यदि चतुर्थभाव क्रूरित [पापयुतदृष्ट] हो तो विवाहिता स्त्री की प्राप्ति और यदि सप्तमभाव क्रूरित हो तो धरेली [रखेली] स्त्री का लाभ हो ॥ ६२ ॥

व्याख्या—इस की व्याख्या श्लोक ९१ की टीका में कर दी गई है ॥ ९२ ॥

उभयो: सौम्यतां प्राप्ते द्वे स्तो धृतविवाहिते ।

उभयो: क्रूरतां प्राप्ते न धृता न विवाहिता ॥ ९३ ॥

अर्थ—दोनों [चतुर्थ और सप्तम भाव] के शुभत्व [शुभ ग्रह युत्दृष्ट] को प्राप्त होने पर एक धरेली और एक विवाहिता अर्थात् दो स्त्रियों की प्राप्ति हो। दोनों [चतुर्थ और सप्तम भाव] के क्रूरित [क्रूरग्रहयुतदृष्ट] होने पर न रखेली और न ही विवाहिता स्त्री का लाभ हो ॥ ९३ ॥

व्याख्या—भाव यह है कि यदि चतुर्थ और सप्तम स्थानों पर शुभग्रह की युति या दृष्टि हो तो प्रश्नकर्त्ता की दो स्त्रिएँ होती हैं, एक विवाहिता और एक रखेली। किन्तु यदि चतुर्थ और सप्तम स्थान पापग्रह से युत् वा दृष्ट हों तो प्रश्नकर्त्ता को कोई भी स्त्री प्राप्त नहीं होती, न विवाहिता और न ही धृतांगना। अर्थात् प्रश्नकर्त्ता स्त्रीहीन ही रहेगा ॥ ९३ ॥

अब आचार्य धृताङ्गना और विवाहिता स्त्रियों द्वारा सुख प्राप्ति पर विचार करते हैं—

न धृता परिणीता वा योगेऽत्र सुखदायिका ।

परिणीता धृता वाऽपि पाश्चात्त्ये सुखदायिका ॥९४॥

अर्थ—इस योग में धरेली या विवाहिता स्त्री पहले सुख के देने वाली नहीं होता, पर बाद में सुख देती है ॥९४॥

व्याख्या—प्रश्नकालीन लग्न से चतुर्थ भाव में क्रूर ग्रह का युतिदृष्टि सम्बन्ध होने से विवाहिता स्त्री का लाभ तो होगा ही [देखो श्लोक ९२] किन्तु चतुर्थ भाव सुखस्थान भी है। अतः सुखभाव पर क्रूर ग्रह का योगदृष्टि सम्बन्ध सुख की हानि करता है। इसी प्रकार

सप्तम स्थान से क्रूरग्रह का युतिदृष्टि सम्बन्ध होने से रखेली स्त्री की प्राप्ति का योग बनता है [देखो श्लोक ९४] । किन्तु सूर्य, मंगल, शनि, राहु में से कोई भा सप्तम भाव में हो तो लग्न पर पूर्ण दृष्टि के कारण शरीर को रोगग्रस्त करके सुख में वाघा डालते हैं। सप्तमस्थ मंगल धनभाव [कुटुम्ब भाव] को भी देखता है, अतः इसका फल धन नाश, कुटुम्बियों से कलह या कुटुम्बियों का मरण आदि हो सकता है। इसलिए भी सुख की हानि होगी। सप्तमस्थ शनि प्रश्न लग्न के अतिरिक्त सुखभाव को भी क्रूरदृष्टि से देखेगा, सो वह भी सुख की हानि ही करता है। अत: आचार्य ने ठीक ही कहा है कि पहले सुख की हानि होगी, पश्चात् सुख की प्राप्ति । श्लोक ९३ के अनुसार शुभग्रहों के चतुर्थ और सप्तम भाव पर युतिदृष्टि सम्बन्ध के कारण प्राप्त हुई धराङ्गना और विवाहिता स्त्रिएँ दोनों ही पहले सुखप्रद और बाद में दुःखदायक होंगी, यह भी स्पष्ट ही है।

दम्पति सम्बन्ध—यदि लग्नेश लग्न भाव में और सप्तमेश सप्तमभाव में हों (१), लग्नेश सप्तम भाव में और सप्तमेश लग्नभाव में हो (२), लग्नेश और सप्तमेश की लग्नभाव पर दृष्टि हो (३), अथवा लग्नेश और सप्तमेश की सप्तम भाव पर दृष्टि हो (४), तो इन चार योगों में जाया और पति की पारस्परिक प्रीति दिन प्रतिदिन बढ़ती है। लग्नेश और सप्तमेश में से एक या दोनों शत्रुराशि में हों तो दोनों में वैर होता है। लग्नेश यदि शत्रुराशि में हो तो पुरुष शत्रुता करता है और यदि सप्तमेश शत्रुराशि में हो तो स्त्री शत्रुता करती है। इसी प्रकार यदि स्त्री प्रश्नकर्त्ता हो और प्रश्नलग्नेश शत्रुराशि में हो तो स्त्री शत्रुता करती है, तथा सप्तमेश शत्रुराशि में हो तो उस स्त्री का पति शत्रुता करता है। यदि लग्नेश और सप्तमेश मित्रराशिगत हों तो दम्पति में मित्रता होती है, यदि सम [उदासीन]

राशि में हो तो समता। अथवा लग्नेश सप्तमेश मित्र ग्रह हों तो मित्रता और सम हों तो समानता होती है। यदि उनमें पारस्परिक शत्रुता हो अर्थात् लग्नेश मित्र की राशि में और सप्तमेश शत्रु की राशि में हो, पर दोनों ग्रहों में नैसर्गिक मित्रता हो तो उनमें कभी प्रीति और कभी शत्रुता हो जाती है। इसी प्रकार यदि लग्नेश सप्तम स्थान में हो तो प्रश्नकर्त्ता अपने जीवन साथी का आज्ञाकारी होता है और यदि सप्तमेश लग्नभाव में हो तो प्रश्नकर्त्ता का जीवन साथी प्रश्नकर्त्ता का आज्ञाकारी होता है।

स्त्रीपुरुष के गुणाधिक्य योग—यदि प्रश्नकर्त्ता पुरुष हो और प्रश्नलग्नेश स्वोच्चराशिगत हो और सप्तमेश उच्चराशिगत न हो तो पुरुष स्त्री की अपेक्षा अधिक गुणी होता है। यदि प्रश्नकर्त्ता स्त्री हो और प्रश्नलग्नेश स्वोच्चराशिगत हो और सप्तमेश उच्चराशिगत न हो तो स्त्री पति की अपेक्षा अधिक गुणवती होती है। भाव यह है कि दोनों भावों में जो अधिक उच्च, स्वक्षेत्री होने पर बली हो उसमें गुणों की अधिकता होती है, यदि समान हों तो समानता।

रुष्टाऽगमन विचार—कोई प्रश्न करे कि मेरी स्त्री रुष्ट हो कर गई है, फिर आवेगी या नहीं तो ऐसे प्रश्न में लग्न से चतुर्थ भाव पर्यन्त यदि सूर्य या शुक्र हो तो नहीं आवेगी, पर यदि शुक्र वक्री हो तो जिस समय शुक्र मार्गी हो उस समय घर लौटेगी। यदि शुक्र या सूर्य चतुर्थ भाव से आगे हो तो स्त्री वापिस लौट आवेगी। कारण यह कि लग्न से चतुर्थ भाव पर्यन्त स्त्री के हर्ष स्थान हैं और चतुर्थ से सप्तम भाव पर्यन्त पुरुष के हर्ष स्थान हैं। यदि शुक्र सूर्य के समीप से अभी उदय हुआ हो अथवा वक्र हो तो रुष्टा स्त्री आप ही लौट आवेगी। यदि क्षीण चन्द्रमा का इससे सम्बन्ध हो तो बहुत दिनों में और यदि पूर्ण चन्द्रमा का सम्बन्ध हो तो शीघ्र ही लौटेगी। इसी प्रकार स्त्री प्रश्न-

कर्त्ता के सम्बन्ध में पुरुष के लौटने बावत कहना चाहिए ।

स्त्रीमृत्यु विचार—यदि पापग्रह चतुर्थ और सप्तम हों, शुक्र [स्त्रीकारक] बलहीन हो, अथवा राहु सप्तमस्थ हो तो स्त्री मर जाती है। यदि सप्तम भाव में पापग्रह हों और चौथे में शुभ ग्रह हों तो विवाहिता स्त्री मर जाती है और रखेली स्त्री जीवित रहती है। यदि दोनों स्थानों में पाप ग्रह हों तो प्रश्नकर्त्ता के यदि धृता और विवाहिता स्त्रिएँ हों तो दोनों का मरण होता है। प्रश्नकालीन कुंडली में यदि सप्तमेश त्रिक [६-८-१२] स्थान में हो तो स्त्री का नाश हो। इसी प्रकार सप्तमेश शुक्र त्रिकभाव में हो तो स्त्री और वीर्य दोनों का नाश हो। यदि लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, द्वादश स्थानों में मंगल हो और शुक्र निर्बल, अस्त, नीच, विनष्ट हो तो स्त्री की जन्म अथवा प्रश्नकुंडली में पति की मृत्यु हो, और पति की जन्म या प्रश्नकुण्डली में स्त्री की मृत्यु हो। यदि स्त्री प्रश्नकर्त्ता हो और प्रश्नलग्न में राहु और अष्टम या द्वादश भाव में मंगल हो तो वह स्त्री विधवा हो जायगी। यदि इसी योग में लग्न में राहु, अष्टम या द्वादशभाव में मंगल और शुक्र दोनो हों (१) लग्न में राहु और अष्टम शुक्र हो (२) लग्न में शुक्र और राहु हों और अष्टम या द्वादशभाव में मंगल हो (३) तो इन तीनों योगों में विधवा होने के बाद अन्य पुरुष को ग्रहण करेगी। दैवज्ञ शिरोमणि पराशर बृहत् पाराशरहोराशास्त्र में लिखते हैं कि '**कलत्रनाथे रिपुनीचसंस्थे मूढ़ेऽथवा पापनिरीक्षिते वा। कलत्रभे पापयुते च दृष्टे कलत्रहानिं प्रवदन्ति सन्तः**।' अर्थात् 'सप्तमेश यदि शत्रु या नीच राशिगत हो और पापग्रह या मूढ़ ग्रह द्वारा देखा जाये तथा सप्तमस्थान में पाप ग्रह की युति वा दृष्टि हो तो स्त्री का नाश होता है, ऐसा सन्तजन कहते हैं।' यह योग मैं ने अनेक कुंडलियों पर परीक्षा करने के बाद लिखा है। पाठकजन जातकग्रन्थों से अन्य योग स्वयं देखलें। हमें खेद है कि पुस्तक के कलेवर के बढ़ जाने की आशङ्का के कारण हम अनुभव-सिद्ध योगों

का विवरण नहीं दे सके, केवल मोटे मोटे योग लिख दिये हैं ॥९४॥

इति स्त्रीलाभालाभविचारद्वारम् ॥१८॥

अब आचार्य विषकन्या का निर्णय करते हैं—

रिपुक्षेत्रस्थितौ द्वौ तु लग्नाद्यदि शुभग्रहौ ।
क्रूरश्चैकस्तत्र जाता भवेत्स्त्री विषकन्यका ॥९५॥

अर्थ—यदि लग्न से छटे स्थान में दो शुभ ग्रह और एक पापग्रह हो तो इस योग में उत्पन्न हुई स्त्री विषकन्या होती है ॥९५॥

व्याख्या—यह न केवल जन्मकालीन लग्न से ही देखना किन्तु प्रश्न लग्न में भी यदि यह योग हो तो प्रश्नकर्त्ता यदि स्त्री हो तो वह विषकन्या है। ग्रन्थान्तर में लिखा है कि जन्म समय जिस कन्या के लग्न में शनि, बारहवें रवि और नवम भाव में मंगल हो वह विषकन्या होती है। इसी प्रकार नक्षत्र, तिथि, दिन विशेष में उत्पत्ति के कारण भी विषकन्या योग बनता है, पर यहां असंगत होने से नहीं लिखा जा रहा। विषकन्या विधवा या सन्तानहीन होती है और पितृकुल और श्वशुरकुल दोनों का नाश करती है। अर्थात् उसके जन्म के अनन्तर ही पितृकुल का क्षय होना शुरू होता है और विवाह के पश्चात् पतिकुल का भी नाश होने लगता है। पर कई आचार्यों का मत है कि यदि कन्या के जन्मलग्न या जन्मराशि [जन्म समय जिस भाव में चन्द्रमा हो] से सप्तम भाव का स्वामी सप्तम भाव में ही हो अथवा शुभ ग्रह सप्तम भाव में हों तो विषकन्या का दोष नहीं रहता ॥९५॥

इति विषकन्यानिर्णयद्वारम् ॥१९॥

अब भाव के अन्त में ग्रह की स्थिति होने से भावफल का निर्णय करते हैं—

भावांतगतः खेटः परभावफलं ददाति पृच्छासु ।
अंतघटीर्यावदसावासीनफलं विवाहादौ ॥ ९६ ॥

अर्थ—समस्त प्रश्नों में भाव के अन्त में स्थित ग्रह अगले भाव

का फल देता है पर विवाहादि कार्य में अन्त घटी तक वह उसी भाव का फल देता है ॥ ९६ ॥

व्याख्या—जन्मपत्रिका और वर्षपत्रिका बनाते समय ग्रहों और भावों को स्पष्ट करके चलितचक्र बनाने की विधि से ज्योतिर्विद् भली भांति परिचित हैं। कहा भी गया है कि " **बिना चलितचक्रेण वृथोक्तं भावजं फलम्। नारी यौवनसम्पन्ना पतिहीना न शोभते।**" अर्थात् " चलितचक्र के बिना भावोत्पन्न फल का कहना ऐसे ही वृथा है जैसे यौवनमत्ता स्त्री का जीवन पति के बिना।" भाव यह है कि चलितचक्र, सन्धियां आदि बनाकर यदि ग्रह सन्धिगत हो तो तुच्छफल और यदि अगले भाव में ग्रह प्रवेश करे तो अगले भाव का फल देता है। यह विधान सर्वमान्य है। किन्तु प्रश्नशास्त्र में यह बात नहीं है। अतः आचार्य ने यहां स्पष्ट कर दिया है कि यदि किसी भाव के अन्तिम अंशों में ग्रह स्थित हो तो अगले भाव का फल होता है, क्योंकि वह अगले भाव में जाने का इच्छुक है। किन्तु यदि भावांतस्थित ग्रह वक्री हो तो क्या करना चाहिए, यह बात आचार्य ने नहीं बताई। सम्भवतः वक्रीग्रह का भी वही फल माना है जो मार्गी का। पर हमारे विचार में ऐसा नहीं होना चाहिए, क्योंकि वक्री ग्रह सदा पीछे हटता है, अगले भाव में प्रवेश करने का इच्छुक नहीं हो सकता। अगले दो श्लोकों में आचार्य ने विवाह विषयक विचार किया है, इस लिए इस श्लोक में इस बात का समाधान कर दिया गया है कि विवाहादि प्रश्न में अन्तिम घड़ी तक ग्रह उसी भाव का फल देता है जिस में वह स्थित हो ॥ ९६ ॥

इति भावांतग्रहद्वारम् ॥ २० ॥

अब विवाह समय वर्षायोग तथा साधारण वृष्टि सम्बन्धी विचार करते हैं—

अंबरगतं शुभग्रहयुग्मं वृष्टिर्भवेद्विवाहादौ ।
लग्ने शुभत्रयस्य तु योगे महती भवेद्वृष्टिः ॥ ९७ ॥

अर्थ—[विवाह लग्न से] दशम स्थान में यदि दो शुभग्रह हों तो विवाहादि कार्य के समय वर्षा हो और विवाह लग्न में यदि तीन शुभग्रहों का योग हो तो बहुत वर्षा हो ॥ ९७ ॥

व्याख्या—विवाहादि से भाव अन्य संस्कारों से भी है। यदि विवाह लग्न अथवा किसी और संस्कार के मुहूर्त्त में विवाह लग्न या संस्कारलग्न से दशम स्थान में दो शुभग्रह हों तो विवाह, संस्कार आदि के समय वर्षा होती है। और यदि विवाह या संस्कार-लग्न में तीन शुभग्रह हों तो अत्यन्त वर्षा होती है। यदि कोई वर्षा ऋतु में प्रश्न करे कि अमुक समय वर्षा होगी कि नहीं, तो भी उक्त ढंग से उत्तर देना चाहिए। अर्थात् यदि प्रश्नलग्न से दशमस्थान में दो शुभग्रह हों तो मामूली वर्षा और लग्न म तीन शुभग्रह होने से अत्यन्त वर्षा का होना निश्चित करे। यदि दशम अथवा लग्न में पापग्रह हों तो वर्षा नहीं होगी और यदि शुभ और पापा दोनों ग्रह हों तो खंडवृष्टि कहना चाहिए। हमारे विचार में यदि प्रश्नलग्न में जलराशि हो और जलग्रह की उस में स्थिति हो तो अवश्य वर्षा होगी। इसी प्रकार दशमस्थान में भी समझना। "**कर्कघटैणझषालितुलासजलाः शेषाः शुष्काः**" अर्थात् "कर्क, कुम्भ, मकर, मीन, वृश्चिक और तुला ये छः राशिएँ सजल हैं और शेष राशिएँ शुष्क हैं।" एवं चन्द्रमा और शुक्र सजल [आर्द्र] ग्रह हैं, मंगल, सूर्य और शनि [निर्जल] ग्रह हैं, गुरु और बुध सजल राशि में सजल और निर्जल राशि में निर्जल होते हैं॥ ९७ ॥

अब विवाह लग्न से स्त्री के जीवन मरण का विचार करते हैं—

मूर्तावुच्चः खेटो जामित्रे दधाति येन दृशम् ।
स नो हंति कलत्रं क्रूराश्चान्ये तु निघ्नन्ति ।। ९८ ।।

अर्थ—[विवाहलग्न के समय] लग्नभाव में यदि उच्च ग्रह हो तो सप्तम स्थान को देखने के कारण स्त्री का मरण नहीं करता, अन्य क्रूरग्रह लग्न में स्त्री का हनन करते हैं ।। ९८ ।।

व्याख्या—भारत वष में विवाहादि षोड़श संस्कारों के मुहूर्त्तादि निकालने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। प्रत्येक कार्य शुभ समय, शुभलग्न में किया जाता था। विवाह मुहुर्त्त प्रकरण में लग्नादि शुद्धि पर मुहूर्त्तचिन्तामणि, महूर्त्तमार्त्तण्ड आदि ग्रन्थों में सविस्तार विचार किया गया है। पर यह मत सर्वमान्य है कि विवाहलग्न में क्रूरग्रह नहीं होना चाहिए क्योंकि लग्न में क्रूरग्रह स्त्री के घातक हैं। त्रिविक्रमसंहिता में लिखा है कि " **त्याज्या लग्नेऽब्धयो मंदात् षष्टे शुक्रेन्दुलग्नपाः । रन्ध्र चन्द्रादयः पंच सर्वेऽस्ते ऽब्जगुरुसमौ ।**" अर्थात् विवाहलग्न का निश्चय करते हुए " लग्न में शनि, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल न हो, लग्न से छटे भाव में शुक्र, चन्द्र, और लग्नेश न हो, अष्टमस्थान में चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र न हों, लग्न से सप्तम कोई ग्रह न हो, किन्तु सातवें चन्द्रमा और गुरु समान हैं।" भाव यह है कि लग्न में सूर्य, मंगल, शनि इन तीन क्रूरग्रहों के साथ ही चन्द्रमा भी नहीं होना चाहिए। इस से सिद्ध हुआ कि आचार्य ने विवाह लग्न में क्रूर ग्रह होने से स्त्री का मरण माना है। पर आचाय यह भी कहते है कि यदि लग्न में उच्चराशिगत कोई ग्रह हो तो स्त्री का मरण इस लिए नहीं होता कि वह पूर्ण दृष्टि से सप्तमस्थान [स्त्रीभाव] को देखता है ।। ९८ ।।

इति विवाहकाले वृष्टिः स्त्रीमृत्युविचारद्वारम् ।। २१ ।।

अब वादी और प्रतिवादी की जयाजय पर प्रकाश डालते हैं—

क्रूरः खेटो लग्ने विवादपृच्छासु जयति विवदंतम् ।
सर्वावस्थासु परं नीचास्ते जयति न द्विषितम् ॥६६॥

अर्थ—विवाद (झगड़ा, लड़ाई, मुकद्दमा आदि) प्रश्न में क्रूर ग्रह लग्न में हो तो हर हालत में वादी प्रतिवादी को जीतता है, किन्तु ग्रह यदि नीच या अस्त हो तो शत्रु को नहीं जीतेगा (अर्थात् वादी की पराजय होगी) ॥६६।

व्याख्या—मुकद्दमा करने वाले को वादी (मुद्दई) या 'यायी' की संज्ञा दी जाती है और जिस पर मुकद्दमा किया जावे उसे प्रतिवादी (मुद्दालैह) या 'स्थायी' कहते हैं । इसलिए मुकद्दमा, लड़ाई झगड़े के प्रश्न में यदि प्रश्न-लग्न में पापीग्रह हो और सप्तम भाव में शुभ या कोई ग्रह न हो तो वादी की जीत होती है, क्योंकि लग्नस्थित क्रूरग्रह क्रूरदृष्टि से सप्तमभाव (प्रति-वादी के स्थान) को देखता है । स्मरण रहे कि प्रथमभाव वादी का स्थान है और सप्तमभाव प्रतिवादी का गृह है । यदि सप्तमभाव में शुभ ग्रह हो और लग्नभाव में क्रूर ग्रह हो तो जीत वादी की होती है, क्योंकि सप्तमस्थ शुभग्रह पूर्णदृष्टि से वादी के स्थान (लग्न भाव) को देखता हुआ शुभ फल देता है और लग्नस्थ क्रूरग्रह क्रूरदृष्टि से सप्तम को देखता हुआ पापफल देता है । इसका यह अभिप्राय हुआ कि यदि लग्न में शुभ ग्रह हो और सप्तम में पाप-ग्रह हो तो वादी की पराजय और प्रतिवादी की जय हो । शत्रुकृत उपद्रव, शत्रुकृत कष्ट, शत्रु से विवाद, युद्ध, चुनाव आदि प्रश्नों में पापग्रह लग्न में हो तो जय और पापग्रह सप्तम हो अथवा पापग्रह लग्न को देखे तो वादी की पराजय होती है । परन्तु यदि लग्नस्थित क्रूरग्रह नीचराशि, शत्रुराशि अथवा सूर्य के निकटवर्ती होने से अस्त हो तो वादी की जीत नहीं होती । कारण यह कि नीचराशि में स्थित ग्रह अपने सप्तम स्थान (प्रतिवादी के स्थान) अथवा अपनी उच्च राशि को देखता है। जिस राशि का ग्रह नीच होता है उस से सप्तम राशि में ग्रह उच्च होता है । लग्नस्थित नीच ग्रह सप्तमस्थ उच्च राशि

को उत्तम दृष्टि से देखने के कारण प्रतिवादी को जय प्रदान करता है। इसी प्रकार अस्त ग्रह लग्न में होने से वादी को अस्त (पराजय) करता है और यदि सप्तमभाव में नीचराशि का पापग्रह होवे तो इसी कारण प्रतिवादी को पराजय और वादी को जय प्रदान करता है। अस्त और शत्रुराशि में स्थित सप्तम भाव में पाप ग्रह भी प्रतिवादी को हार और वादी को जय देता है ॥९९॥

लग्ने द्यूने च यदा क्रूरः खेटो विवादिनोर्न तदा ।
कलहनिवृत्तिः कालेन जयति बलवान्गतबलं तु ॥१००॥

अर्थ—यदि लग्न और सप्तम स्थान में क्रूर ग्रह हो तो लड़ने वालों का झगड़ा निवृत्त न होवे और बहुत समय पाछे बलवान् ग्रह निर्बल ग्रह को जीतता है (अर्थात् लग्नगत पापग्रह बली हो तो वादी की जीत होती है और यदि सप्तम स्थित पापग्रह बली हो तो प्रतिवादी की बहुत समय झगड़ा रहने के बाद जीत होगी) ॥१००॥

व्याख्या मुकद्दमा, युद्ध आदि प्रायः क्रूर वारों और क्रूरग्रह के लग्नस्थित होने पर आरम्भ करने की व्यवस्था ज्योतिषशास्त्र में की गई है। श्लोक ९९ की व्याख्या में हमने बताया है कि क्रूर ग्रह वादी या प्रतिवादी को लग्न या सप्तम में रहने से जय प्रदान करते हैं। इस श्लोक में आचार्य ने बताया है कि यदि लग्न और सप्तम दोनों स्थानों में एक एक पापी ग्रह हो तो मुकद्दमा या लड़ाई झगड़ा चिरकाल तक चलता रहता है और तब कहीं जाकर जीत उसकी होती है जिसके स्थान में बली क्रूर ग्रह हो। भाव यह कि यदि लग्नस्थित क्रूर ग्रह सप्तमस्थ क्रूर ग्रह की अपेक्षा अधिक बली है तो वादी की अन्त में जीत होगी, और यदि सप्तमगत क्रूर ग्रह लग्नगत क्रूर ग्रह की अपेक्षा अधिक बली है तो प्रतिवादी की जीत और वादी की हार होगी। दोनों अवस्थाओं में हार या जीत बहुत समय मुकद्दमा, लड़ाई झगड़ा चलने के

पश्चात् ही होगी। कई आचार्यों का मत है कि यदि दोनों स्थानों पर क्रूरग्रह बली हो तो सन्धि या पूर्ण विरोध होता है—**यदा द्वौ बलिनौ स्यातां सन्धिर्वा विग्रहो महान्** (प्रश्नभूषण १३–२)। मतान्तर यह भी है कि प्रश्नलग्न में यदि लग्नेश और सप्तमेश परस्पर मित्र हों या लग्नेश और सप्तमेश एक दूसरे को मित्र दृष्टि से देखते हों तो शीघ्र ही वादी और प्रतिवादी में सन्धि (राज़ीनामा) होता है। ताजिक नीलकण्ठी के अनुसार यदि लग्नेश पंचम भाव में हो और शुभग्रह केन्द्र में हों तो वादी और प्रतिवादी में सन्धि (राज़ीनामा) होगी, अन्यथा मिलाप या सन्धि नहीं होगी यदि लग्नेश, षष्टेश और सप्तमेश परस्पर शत्रु हों तो कलह बढ़ेगा। षट्पंचाशिका (३–३) के अनुसार पुरुषराशि (मेष, मिथुन आदि विषम राशि) के लग्न में यदि शुभग्रह हों अथवा पुरुषराशि स्थित शुभ ग्रह ग्यारहवें या बारहवें भाव में हों तो वादी और प्रतिवादी में सन्धि होती है और इन्हीं स्थानों में द्विःस्वभाव (मिथुन, कन्या, धनु, मीन) राशि हो और उनमें पापग्रह हों तो दोनो में विरोध बढ़ता है। इसी ग्रन्थ के तीसरे अध्याय के चतुर्थ श्लोक में बताया गया है कि शुभग्रह मनुष्य राशि में हों अथवा केन्द्र (१।४।७।१०) में हों और उन्हें शुभग्रह देखते हों तो दोनों में प्रीतिसहित सन्धि, और इन्हीं स्थानों में पापग्रहों पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो दोनों में विशेष करके वैर विरोध होता है ॥१००॥

लग्नं द्यूनं मुक्त्वा परस्परं क्रूरयोः सकलदृष्टौ ।
विवदद्विवादियुगलं क्षुरिकाभ्यां प्रहरति तदैवम् ॥१०१॥

अर्थ—लग्न और सप्तमस्थान को छोड़ कर अन्य स्थानों में स्थित दो पापग्रहों की परस्पर पूर्ण दृष्टि हो तो वादी और प्रतिवादी दोनों छुरियों (तलवारों) से प्रहार करें ॥१०१॥

व्याख्या—पिछले श्लोक में आचार्य कह आए हैं कि यदि लग्न और सप्तम में क्रूरग्रह हों तो विलम्ब से अधिक बली ग्रह वाले की जीत होती है।

लग्न और सप्तमभाव में क्रूरग्रह होने से दोनों ग्रहों में परस्पर दृष्टि सम्बन्ध होने से आचार्य ने इस श्लोक में ठीक ही लग्न और सप्तमभाव के पारस्परिक दृष्टि सम्बन्ध का त्याग कर अन्यत्र दृष्टि सम्बन्ध का ग्रहण किया है। आचार्य का आशय है कि यदि दो क्रूरग्रह लग्न और सप्तमभाव को छोड़ कर अन्य भावों को देखें तो हथियारों से वादी और प्रतिवादी एक दूसरे पर आक्रमण करें। हमारे मत में यदि वादी और प्रतिवादी का मृत्यु योग बने तो उन दोनों की हथियारों से मृत्यु भी हो सकती है। यदि सप्तमेश अष्टम हो और पापीग्रह उसे देखते हों तो प्रतिवादी की मृत्यु भी होती है। इसके विपरीत यदि लग्नेश अष्टमस्थ हो और पापी ग्रहों की उस पर पूर्ण दृष्टि हो और शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो वादी की मृत्यु शस्त्रों से होती है। इन योगों में यदि शुभाशुभ ग्रहों की युति या दृष्टि हो तो मृत्यु नहीं होती, केवल शस्त्र प्रहार होता है ।।१०१।।

इति वादविवादविचारद्वारम् ।।२२।।

अब संकीर्ण अर्थात् नानाविध विषयों पर विचार किया जाता है—

व्रतदानपट्टारोपणप्रतिमास्थापनविधिः स्मृतो गुरुणा ।
दशमस्थानं कार्यं रविदृष्टिप्रभृतिभिर्वलवत् ।।१०२।।

अर्थ—दीक्षाग्रहण, राज्याभिषेक और प्रतिमास्थापन (मन्दिर या और कहीं मूर्ति की प्रतिष्ठा करना) दशमस्थान सूर्यादि ग्रहों की दृष्टि से बलवान् हो तो करने चाहिएं, ऐसा गुरुजन अथवा कार्य करने वाले कहते हैं ।१०२।।

व्याख्या—भाव यह है कि दीक्षाग्रहण, राज्याभिषेक, प्रतिमास्थापन आदि कार्य विधि उस समय आरम्भ करने चाहिएं जिस समय दशमस्थान बलवान् हो। कर्म, व्यापार, मान, ज्ञान. राज्य, आस्पद आदि दशम भाव के नाम हैं। वैद्यनाथ दीक्षित के मतानुसार सूर्य, बुध, गुरु और शनि दशमभाव के भावकारक ग्रह हैं। चन्द्रमा और शुक्र की दृष्टि और बुध की दृष्टि शुभ ग्रह होने से शुभ ही

मानी गई है । मङ्गल स्वयं पृथ्विपति होने से नेता या मण्डलेश्वर है। अतः दशमभाव पर सूर्यादि सप्तग्रहों की दृष्टि होने से कर्म, व्यापार (व्यवसाय), मान, ज्ञान, राज्यास्पद की वृद्धि होने में क्या सन्देह है ? यहाँ राज्याभिषेक को नौकरी, सर्विस के अर्थों में भी ग्रहण करना चाहिए । नौकरी का आरम्भ उस समय करना चाहिए जब दशमभाव बलवान् हो । ऐसा करने से अफ़सर सदैव प्रसन्न रहेंगे और दिन प्रतिदिन मान प्रतिष्टा की वृद्धि होगी। प्रतिमा की स्थापना भी यश के लिए की जाती है, अतः प्रतिमास्थापन के समय दशम-भाव (यशभाव) का बली होना अनिवार्य है. अन्यथा मानहानि की सम्भावना है ॥१०२॥

यत्रान्यलाभयोगो न भवति नवमं च भवति शुभदृष्टम् ।
तत्रार्चिततलाभः प्रष्टुर्गणकेन निर्देश्यः ॥१०३॥

अर्थ— यदि लाभ प्रश्न में अन्य कोई प्रबल लाभ योग न हो और यदि नवमभाव शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो प्रश्नकर्त्ता को अचिन्तित लाभ होगा, ऐसा दैवज्ञ कहे ।।१०३।।

व्याख्या—भाव यह है कि यदि कोई प्रश्नकर्त्ता लाभ विषयक प्रश्न करे किन्तु लाभ का कोई योग न बनता हो तो भाग्यभाव (नवमस्थान) को यदि कोई शुभ ग्रह देखे तो कहना चाहिए कि मनोवांछित लाभ होगा । भाग्य-भाव पर शुभग्रह की दृष्टि होने से भाग्यवृद्धि के अन्तर्गत लाभ का होना अनिवार्य है । इसी कारण कुन्ती ने गर्भवती उत्तरा को आशीर्वाद दिया था— **"भाग्यवन्तं प्रसूयेथा मा शूरान् मा च पण्डितान् । शूराश्च कृतविद्याश्च वने सीदन्ति मत्सुताः ।।** अर्थात् तू भाग्यशाली पुत्र पैदा कर न कि पंडित या शूर-वीर, क्योंकि पंडित और शूरवीर होते हुए भी मेरे पुत्र (पांडव) जंगलों की राख छानते हैं । अतः भाग्यवृद्धि में लाभवृद्धि का समावेश होने से भाग्यभाव पर शुभग्रह की दृष्टि लाभप्रद सिद्ध हुई ।।१०३।।

रंध्रे लग्नाधिपतिर्भुनक्ति कार्यं तदैव यदि तस्मात् ।
शत्रौ यात्यथ मित्रे तस्मिन्काले तदा सिद्धिः ॥१०४॥

अर्थ—यदि लग्नेश अष्टम भाव में हो और शत्रु राशि में हो तब ही यह कार्य का भक्षण करता है अर्थात् कार्य नाश करता है यदि मित्रराशि हो तो कार्य की सिद्धि करता है ॥१०४॥

व्याख्या—दैवज्ञ लोग प्रायः यह मानते हैं कि जिस भाव का पति त्रिकस्थान में हो, उस भाव का नाश होता है—**यद्भावनाथो रिपुरन्ध्ररिष्फे तद्भावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञः**। आचार्य इस भूल को ठीक करते हुए कहते हैं कि यदि भावेश त्रिकस्थान में मित्र की राशि में हो तो भाव की वृद्धि और यदि शत्रुग्रह की राशि में हो तो भाव की हानि करता है। महर्षि पराशर भी आचार्य के इस मत की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि—'**दोषकृन्न तु सर्वत्र स्वोच्चस्वर्क्षगतो ग्रहः। षडादित्रयसंस्थितश्चेद् तद्विना दोषकृच्छुभः** ॥ अर्थात् स्वोच्च, स्वक्षेत्री (एवं मित्र क्षेत्री) ग्रह सर्वत्र दोषकारक नहीं होता। यदि ग्रह छटे, आठवें, बारहवें स्थान में भी हो और स्वोच्च, स्वक्षेत्री और मित्र के क्षेत्र में न हो तो ही दोषकारक होता है। जातकपारिजात में भी लिखा है कि '**नीचस्थो रिपुराशिस्थः खेटो भावविनाशकः। मूलस्वतुंगमित्रस्थो भाववृद्धिकरो भवेत्।**' अर्थात् 'नीच और शत्रुराशि में स्थित ग्रह भाव का नाश और स्वक्षेत्र स्वोच्च और मित्रक्षेत्र में स्थित भाव की वृद्धि करता है'। आचार्य का आशय यह प्रतीत होता है कि लाभप्रश्न में यदि लग्नेश अष्टम स्थान में मित्रग्रह के क्षेत्र में हो और लाभ का योग हो तो लाभ अवश्य होता है। यदि लाभयोग होते हुए भी लग्नेश अष्टम भाव में शत्रुक्षेत्री या नीचराशिगत हो तो लाभ नहीं हो पाता, क्योंकि लाभ लेने वाला नीचराशिगत या शत्रुराशिस्थित होने से बीमार होने या विघ्न पड़ने के कारण लाभ से वञ्चित हो जाता है। ॥१०४॥

वीक्षणयुग्भ्यां क्रूरैर्लग्नषडष्टसु च विद्ध इत्यबलः ।
पुष्णाति कष्टभावं मृत्युमपि प्रश्नतश्चन्द्रः ॥१०५॥

अर्थ—लग्न, षष्ट, और अष्टम भाव में क्रूरग्रहों से युत् वा दृष्ट चन्द्रमा विद्ध और निर्बल कहाता है, प्रश्नलग्न में ऐसा चन्द्रमा कष्ट को बढ़ाता है, मृत्यु भी कर देता है ॥१०५॥

व्याख्या—भाव यह है कि चन्द्रमा चाहे लग्न में चाहे अष्टम में, और चाहे रिपुभाव में हो और क्रूर ग्रहों से युत् या दृष्ट हो तो कष्ट और मृत्यु का देने वाला होता है । यदि चन्द्रमा इन्हीं स्थानों में शुभग्रहों से युत् वा दृष्ट हो तो सुखकारी होता है । यदि शुभाशुभ ग्रहों से युत् वा दृष्ट हो तो मिश्रफल देता है । जन्मलग्न, वर्षलग्न और प्रश्नलग्न में ऐसा ही फल देता है ॥१०५॥

द्वादशे शोभनः खेटो विवाहादिषु सद्व्ययम् ।
क्रूरोऽप्यसद्व्ययं चोरराजाग्निप्रभवं ग्रहः ॥१०६॥

अर्थ—बारहवें स्थान में शुभग्रह विवाहादि शुभ कार्यों पर व्ययकारी है, यदि क्रूरग्रह हो तो चोर, राजा, अग्नि द्वारा या बुरे कामों पर व्यय होता है ॥१०६॥

व्याख्या—द्वादशभाव को व्यय भाव कहा गया है । अतः व्ययभाव में यदि शुभ ग्रह हो तो विवाह, यज्ञोपवीत, मुण्डनसंस्कार, दानादि शुभ कृत्यों पर धन का खर्च होता है । यदि व्यय भाव में पाप ग्रह हो तो कुत्सित कार्यों जुआ, शराब, वैश्यागमन, मुकद्दमा आदि पर व्यय होता है या चोरी द्वारा, या आग लगने से या राजदण्ड द्वारा सम्पत्ति का नाश होता है । यदि व्यय भाव में सूर्य या चन्द्रमा हो तो अवश्यमेव राजकुल (कचहरी) या राजदण्ड द्वारा या मुकद्दमे पर धन का खर्च होता है या सरकार सम्पत्ति को छीन लेती है—**रवौ द्वादशे चन्द्रे वाऽवश्यं राजकुले व्ययम्** । मानसागरी पद्धति में लिखा है कि '**व्ययालये क्षीणकरः कलानां सूर्योथवा द्वावपि संस्थौ । द्रव्यं हरेद्भूमिपतिस्तु**

तस्य व्ययालये वाहुजदृष्टियुक्ते' ।। अर्थात् यदि व्ययस्थान में क्षीण चन्द्रमा या सूर्य या दोनों (सूर्य और चन्द्रमा) स्थित हों और मंगल की व्यय भाव पर युति या दृष्टि हो तो उसका धन राजा हर लेता है। यह जन्मलग्न और प्रश्न-लग्न दोनों में एक जैसा काम करता है ॥१०६॥

इति संकीर्णनिर्णयद्वारम् ॥२३॥

अब दीप्त (सन्दिग्ध) प्रश्नों में प्रवासी के सुख दुःख पर विचार करते हैं—

गृहमागतो न यदसौ किं वद्धः किमथ हत इति प्रश्ने ।
मूर्तौ क्रूरो यदि तत्र हतो न बद्धोऽथवा पुरुषः ॥१०७॥

अर्थ--परदेशी घर नहीं लौटा, क्या वह बन्दी है या मर गया ? इस प्रश्न में प्रश्न लग्न में यदि पापग्रह हो तो वह पुरुष न ही मरा है और न ही बन्धन में है ॥१०७॥

व्याख्या—भाव यह है कि प्रश्न लग्न में यदि क्रूर ग्रह हो तो प्रवासी कुशलपूर्वक है। इसके विपरीत यदि प्रश्नलग्न में शुभ ग्रह हो तो प्रवासी रोगी, शोकातुर, बन्धन आदि में है ॥१०७॥

सप्तमगोऽष्टमगो वा चेत्क्रूरस्तद्धतोऽथ वद्धो वा ।
मूर्तौ च सप्तमेऽपि च यद्वा लग्नेऽष्टमे च भवेत् ॥१०८॥
क्रूरस्तदाऽसौ पुरुषो वद्धश्च हतश्च मुच्यते च परम् ।
दीप्तत्वाद्विहितमिदं व्याख्यानं क्रूरविषयमिह ॥१०९॥

अर्थ--यदि सातवें या आठवें भाव में पापग्रह हो तो मरण या बन्धन हो। और यदि लग्न और सप्तम भाव में पापग्रह हो अथवा लग्न या अष्टम-भाव में पापग्रह हो तो वह पुरुष बन्धन या मृत्युतुल्यकष्ट में है, पर जल्दी ही मुक्त हो। यह पापग्रह का वर्णन दीप्तत्व के कारण किया है ॥१०८-१०९॥

व्याख्या—श्लोक १०७ में कहा गया है कि प्रश्नलग्न में पापग्रह की

स्थिति प्रवासी की कुशलता की सूचक है। अब आचार्य कहते हैं कि यदि सातवें या आठवें भाव में पापग्रह की स्थिति हो तो प्रवासी या मर गया या कैद पड़ा है। और यदि लग्न और सप्तम अथवा लग्न और अष्टम स्थान में एक एक पापग्रह हो तो बन्धन, रोग, शोकादि हो किन्तु जल्दी ही बन्धनादि से मुक्त भी हो। इस से यह अनुमान भी लगाया जा सकता है कि यदि लग्न, सप्तम, अष्टम तीनों ही स्थानों में पापग्रह हों तो मृत्युतुल्य कष्ट या भयावह बन्धन का योग है। यहां 'हतः' के साथ 'मुच्यते च परं' अर्थात् बाद में छूट जाता है, ऐसा लिख कर यह स्पष्ट किया है कि 'हत' के अर्थ यहां 'मरन' नहीं करना, और यदि 'मरन' या 'मृत्यु' अर्थ किए भी जावें तो शरीरान्त नहीं समझना। कारण यह कि मरन या मृत्यु आठ प्रकार की मानी जाती है— व्यथा, दुःख, भय, लज्जा, रोग, शोक, बन्धन, अवमान। यदि 'हत' को इनके अतिरिक्त 'मृत्यु' के अर्थ में लिया जावेगा तो 'मुच्यते' शब्द असङ्गत अथवा व्यर्थ होगा। प्रश्न वैष्णव (८—४४, ४५) से प्रवासी की मृत्यु के दो योग उद्धृत किए जाते हैं :—

सौम्यैः षष्टान्त्यरंध्रस्थैर्विवलैश्चाशुभेक्षितैः । पापयुक्तौ शशांकार्कौ तदा दूरस्थितो मृतः । अर्थात् शुभग्रह छटे, आठवें, बारहवें हों और निर्बल पापग्रहों से दृष्ट हों तथा चन्द्रमा और सूर्य पापग्रहों से युक्त हों तो दूरस्थित प्रवासी का मरण होगा। **पृष्टोदये पापयुते त्रिकोणे केन्द्राष्टषष्टोपगतैश्च पापैः। सौम्यैरदृष्टैः परदेशसंस्थो मृतो गदार्तो नवमे च सूर्ये ।** अर्थात् पृष्टोदयराशि (१–२–४–६–१०) पापग्रह से युक्त हो, त्रिकोण (५—९) केन्द्र (१—४—७—१०), अष्टम और षष्टभाव में पापग्रह हों और इन पर, शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो परदेश गया मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो, नवमें सूर्य हो तो रोगपीडित हो। प्रश्नभूषण (४—११) में लिखा है कि **शशांकलग्नपौ षष्टे सप्तमे वा युतौ यदि। अष्टमेशेन, कुरुतो मरणं पथिकस्य वै।** 'यदि

तस्य व्ययालये वाह्नुजदृष्टियुक्ते' ।। अर्थात् यदि व्ययस्थान में क्षीण चन्द्रमा या सूर्य या दोनों (सूर्य और चन्द्रमा) स्थित हों और मंगल की व्यय भाव पर युति या दृष्टि हो तो उसका धन राजा हर लेता है। यह जन्मलग्न और प्रश्न-लग्न दोनों में एक जैसा काम करता है ।।१०६।।

इति संकीर्णनिर्णयद्वारम् ।।२३।।

अब दीप्त (सन्दिग्ध) प्रश्नों में प्रवासी के सुख दुःख पर विचार करते हैं—

गृहमागतो न यदसौ किं बद्धः किमथ हत इति प्रश्ने ।
मूर्तौ क्रूरो यदि तत्र हतो न बद्धोऽथवा पुरुषः ।।१०७।।

अर्थ—परदेशी घर नहीं लौटा, क्या वह बन्दी है या मर गया ? इस प्रश्न में प्रश्न लग्न में यदि पापग्रह हो तो वह पुरुष न ही मरा है और न ही बन्धन में है ।।१०७।।

व्याख्या—भाव यह है कि प्रश्न लग्न में यदि क्रूर ग्रह हो तो प्रवासी कुशलपूर्वक है। इसके विपरीत यदि प्रश्नलग्न में शुभ ग्रह हो तो प्रवासी रोगी, शोकातुर, बन्धन आदि में है ।।१०७।।

सप्तमगोऽष्टमगो वा चेत्क्रूरस्तद्धतोऽथ बद्धो वा ।
मूर्तौ च सप्तमेऽपि च यद्वा लग्नेऽष्टमे च भवेत् ।।१०८।।
क्रूरस्तदाऽसौ पुरुषो बद्धश्च हतश्च मुच्यते च परम् ।
दीप्तत्वाद्विहितमिदं व्याख्यानं क्रूरविषयमिह ।।१०९।।

अर्थ—यदि सातवें या आठवें भाव में पापग्रह हो तो मरण या बन्धन हो। और यदि लग्न और सप्तम भाव में पापग्रह हो अथवा लग्न या अष्टम-भाव में पापग्रह हो तो वह पुरुष बन्धन या मृत्यतुल्यकष्ट में है, पर जल्दी ही मुक्त हो। यह पापग्रह का वर्णन दीप्तत्व के कारण किया है ।।१०८-१०९।।

व्याख्या—श्लोक १०७ में कहा गया है कि प्रश्नलग्न में पापग्रह की

स्थिति प्रवासी को कुशलता की सूचक है। अब आचार्य कहते हैं कि यदि सातवें या आठवें भाव में पापग्रह की स्थिति हो तो प्रवासी या मर गया या कैद पड़ा है। और यदि लग्न और सप्तम अथवा लग्न और अष्टम स्थान में एक एक पापग्रह हो तो बन्धन, रोग, शोकादि हो किन्तु जल्दी ही बन्धनादि से मुक्त भी हो। इस से यह अनुमान भी लगाया जा सकता है कि यदि लग्न, सप्तम, अष्टम तीनों ही स्थानों में पापग्रह हों तो मृत्युतुल्य कष्ट या भयावह बन्धन का योग है। यहां 'हतः' के साथ 'मुच्यते च परं' अर्थात् बाद में छूट जाता है, ऐसा लिख कर यह स्पष्ट किया है कि 'हत' के अर्थ यहां 'मरन' नहीं करना, और यदि 'मरन' या 'मृत्यु' अर्थ किए भी जावें तो शरीरान्त नहीं समझना। कारण यह कि मरन या मृत्यु आठ प्रकार की मानी जाती है— व्यथा, दुःख, भय, लज्जा, रोग, शोक, बन्धन, अवमान। यदि 'हत' को इनके अतिरिक्त 'मृत्यु' के अर्थ में लिया जावेगा तो 'मुच्यते' शब्द असङ्गत अथवा व्यर्थ होगा। प्रश्न वैष्णव (८—४४, ४५) से प्रवासी की मृत्यु के दो योग उद्धृत किए जाते हैं :—

सौम्यैः षष्टान्त्यरंध्रस्थैर्विवलैश्चाशुभेक्षितैः । पापयुक्तौ शशांकार्कौ तदा दूरस्थितो मृतः । अर्थात् शुभग्रह छटे, आठवें, बारहवें हों और निर्बल पापग्रहों से दृष्ट हों तथा चन्द्रमा और सूर्य पापग्रहों से युक्त हों तो दूरस्थित प्रवासी का मरण होगा। **पृष्टोदये पापयुते त्रिकोणे केन्द्राष्टषष्टोपगतैश्च पापैः। सौम्यैरदृष्टैः परदेशसंस्थो मृतो गदार्तो नवमे च सूर्ये ।** अर्थात् पृष्टोदयराशि (१-२-४-६-१०) पापग्रह से युक्त हो, त्रिकोण (५—६) केन्द्र (१—४—७—१०), अष्टम और षष्टभाव में पापग्रह हों और इन पर, शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो परदेश गया मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो, नवमें सूर्य हो तो रोगपीडित हो। प्रश्नभूषण (४—११) में लिखा है कि **शशांकलग्नपौ षष्टे सप्तमे वा युतौ यदि। अष्टमेशेन, कुरुतो मरणं पथिकस्य वै।** 'यदि

चन्द्रमा और लग्नेश छटे या सातवें स्थान में हो और अष्टमेश से युत् हो तो राही का मरण होता है।' प्रश्नभूषण (४ – १२) के अनुसार यदि पृष्टोदय राशि लग्न में हो, वह शुभग्रह से दृष्ट न हो, पापग्रह उसे देखता हो अथवा केन्द्र में पापग्रह हों तो प्रवासी दुःख से पीड़ित होता है। इसी ग्रन्थ के चौथे अध्याय के १३ वें और १४ वें श्लोक के मुताबिक यदि सूर्य या मंगल अष्टम स्थान में हो तो मार्ग में चोर का भय होता है। अष्टमस्थान में जितने ग्रह हों उतनी ही चोरों की संख्या कहनी चाहिए। सूर्य सिंह राशि में हो, चन्द्र या मंगल अष्टमस्थान में हो तो शस्त्र भय कहना। षट्पंचाशिका (५—४) के अनुसार यदि प्रश्नलग्न पृष्टोदयराशि का हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो प्रवासी का बध या बन्धन हो। पापग्रह तीसरे हों और शुभग्रहों की तीसरे भाव पर दृष्टि न हो तो प्रवासी पहले स्थान से दूसरे स्थान को गया। यदि पापग्रह लग्न से छटे स्थान हो और शुभग्रहों से अदृष्ट हो तो चोरो ने प्रवासी का सर्वस्त्र लूट लिया। केन्द्र में पापग्रह हों और शुभग्रह न देखते हों तो प्रवासी का बध, बन्धन, ताड़न आदि कहना। षट्पंचाशिका (७—११) में लिखा है कि प्रश्नलग्न से नवमस्थान में पापयुत् शनि यदि शुभग्रह से युक्त वा दृष्ट न हो तो परदेसी रोग से पीड़ित है. और यदि शनि इसी स्थिति में अष्टमभाव में हो तो परदेसी की मृत्यु कहनी ॥ १०८ –१०९ ॥

इति दीप्तपृच्छाद्वारम ॥ २४ ॥

अब पथिक के गमन (जाने) और (आगमन) आने का विचार करते हैं—

चतुर्थे दशमे वापि यदि सौम्यग्रहो भवेत् ।
तदा न गमनं क्रूरैस्तत्रैव गमनं भवेत् ॥ ११० ॥

अर्थ—(प्रश्न लग्न से) चौथे या दशवें स्थान में यदि शुभग्रह हो तो गमन नहीं हो और यदि वहीं (चौथे, दशमे) पापग्रह हो तो गमन होगा ॥ ११० ॥

व्याख्या—चतुर्थस्थान गृहस्थिति और दशमस्थान प्रवासस्थान है। इसलिए पृथुयश ने षट्पञ्चाशिका (१—२) में कहा है कि **"मध्यात्प्रवासो"** अर्थात् दशमभाव से प्रवास सम्बन्धी विचार करना चाहिए। चतुर्थ अथवा दशम स्थान में शुभग्रह होने से गृहसुख की वृद्धि होती ही है—**हिबुकाच्चवृद्धिः** (षट्पञ्चाशिका १—२) अतः गृहसुखादि की वृद्धि होने से गमन नहीं हो सकता। यही कारण है कि आचार्य ने इस श्लोक द्वारा स्पष्ट कर दिया कि यदि चतुर्थ या दशमभाव में शुभग्रह हो तो गमन नहीं हो सकता। पापीग्रह चतुर्थ और दशमभवन में गृहसुख के त्याग और प्रदेश यात्रा के सूचक हैं। भाव यह है कि चतुर्थ या दशमस्थान में शुभग्रह के होने से जाने वाले की यात्रा स्थगित हो जाती है और आने वाले का आगमन सिद्ध होता है। यदि इन्हीं स्थानों में पापग्रह हों तो आने वाले का आगमन रुक जाता है और जाने वाले का गमन सिद्ध होता है। इसी लिए प्रश्नभूषण (४ १) में श्री जीवनाथ झा ने कहा है कि **"प्रश्नतनोः सुखभे दशमे वा सौम्यखगो गमनं नहि गन्तुः। तत्र गता यदि पापनभोगा आगमनं न वदन्ति महान्तः ॥"** यद्यपि आचार्य पद्मप्रभुसूरि ने इन स्थानों में पापग्रह के योग से ही गमन माना है तो भी हमारे विचार में यदि इन स्थानों की चर राशि हो तो शीघ्र गमन हो और यदि चर राशि को पाप ग्रह देखते हों तो भी यात्रा का योग हो। प्रश्नवैष्णव (५—१. २. ३) तथा प्रश्नचण्डेश्वर (६—२. ३. ४) के अनुसार चरलग्न हो और चन्द्रमा चरराशिगत शुभग्रहों से युत् वा दृष्ट होवे तो सौख्य-जय-अर्थ सिद्धि-कल्याण को देने वाली और उपद्रवरहित यात्रा होती है। स्थिर लग्न होवे और चन्द्रमा स्थिर राशिगत शुभग्रहों से युत् या दृष्ट होवे तो प्रश्नकर्त्ता का प्रवास नहीं होगा किन्तु अपने स्थान में ही मान, प्रतिष्ठा कार्यसिद्धि आदि हो। द्विःस्वभाव लग्न हो और द्विःस्वभाव राशिगत चन्द्रमा शुभग्रह से युत् वा दृष्ट न हो और पापग्रहों से युत् वा दृष्ट हो तो प्रश्नकर्त्ता का परदेश से आगमन तथा क्लेश, शत्रुभय, धनादि नाश भी कहे ॥ ११० ॥

द्वितीये केन्द्रतोऽभ्येति यदा खेटस्तदागमः ।
आयियासुं ग्रहं दृष्ट्वा ब्रूयादिदमशंकितः ॥ १११ ॥

अर्थ—जब ग्रह केन्द्र से दूसरे स्थान आवे तब आगमन (परदेशी का आना) हो । यह बात आने वाले ग्रह को देखकर निःशंक (निधड़क) कहनी चाहिए ॥ १११ ॥

व्याख्या—प्रश्न लग्न से पहला, चौथा, सातवां और दशवां स्थान केन्द्र कहलाता है । प्रश्नलग्न में ग्रह यदि केन्द्रस्थानों से दूसरे स्थान जावे अर्थात् प्रथम केन्द्र के विषय में लग्न से दूसरे स्थान, दूसरे केन्द्र के विषय में चतुर्थभाव से पंचम स्थान, तीसरे केन्द्र के विषय में सप्तम भाव से अष्टमस्थान, चौथे केन्द्र के विषय में दशमभाव से एकादशभाव कोई ग्रह प्रवेश करे अर्थात् केन्द्र स्थानों से पणफर स्थानों (२—५—८—११) में जावे तो प्रवासी का आगमन कहना चाहिए। यदि ग्रह केन्द्र से पणफर स्थान में आने वाला हो तो जितने दिनों में आने वाला हो उतने दिनों में प्रवासी लौट आएगा, ऐसा कहना चाहिए । पाठकों के लाभार्थ हम कुछ योग षट्पञ्चाशिका (५—१. २. ३) से उद्धृत करते हैं। यदि प्रश्न लग्न से दूसरे, तीसरे और पांचवें भावों में सूर्यादि सप्त ग्रह हों तो देशांतर में गया प्रवासी शीघ्र घर लौटेगा । यदि इन्हीं स्थानों में केवल शुभ ग्रह हों तो गई वस्तु भी प्राप्त होगी, या बिना बताए कोई व्यक्ति घर से चला गया हो तो वह जल्दी आवेगा । और यदि इन्हीं स्थानों में केवल गुरु और शुक्र दो ग्रह हों तो प्रवासी जल्दी लौटेगा और उसके साथ ही नष्ट वस्तु भी मिलेगी । यदि प्रश्नलग्न से सातवें या छटे भाव में कोई ग्रह हो, केन्द्र में गुरु हो और त्रिकोण (पांचवें,नवमें) में बुध या शुक्र हो तो भी प्रवासी शीघ्र आता है ॥२॥ प्रश्नलग्न से अष्टम भाव में यदि चन्द्रमा हो, केन्द्र में कोई पापग्रह न हो तो पथिक सुखपूर्वक वापिस आता है, और यदि केन्द्र में

शुभग्रह हों तो द्रव्य लाभ सहित आता है ।।३।। प्रश्नभूषण (४.३) में भी ऊपर दिए गए मूल श्लोक की पुष्टि की गई है, और अध्याय ४ के आठवें श्लोक में कहा गया है कि यदि शुक्र, बुध, सूर्य और शनि इन में से एक भी चरलग्न में हो, वक्रगति न हो, तो शीघ्र ही परदेशी वापिस आता है। इसी पुस्तक के इसी अध्याय के पन्द्रहवें श्लोक में लिखा है कि यदि नवम या दशम भाव में शुभग्रह हो तो प्रवासी धन से पूर्ण होकर सुखपूर्वक आता है। ताजिक नीलकण्ठी के अनुसार यदि प्रश्न लग्न से तीसरे, छटे और एकादश भाव में पापग्रह हो और केन्द्र में शुभ ग्रह हों तो प्रवासी शीघ्र लौटता है।

प्रवासी के लौटने के समय बारे कई आचार्यों का मत है कि जिस दिन प्रवासी गया हो, उस समय का जो लग्न हो उससे सप्तम भाव का स्वामी जब वक्री हो, तो प्रवासी का आगमन होता है। "अस्तमयान्निवृत्तिः" होने के कारण यह मत भी युक्तिसंगत है। पर खेद इस बात का होता है कि जाते समय प्रवासी के लग्नादि का पता कम मिलता है। षट्पञ्चाशिका (२—४) और प्रश्नचण्डेश्वर (६—१३) के अनुसार प्रश्नलग्न से सर्वोत्तम बली जो ग्रह हो वह लग्न से जितने स्थान पर हो उतने मासों में प्रवासी का आगमन कहे। प्रश्नचण्डेश्वर (६—१४. १५) में कहा है कि यदि सर्वोत्तम ग्रह चन्द्रमा होवे तो उतने दिन, सूर्य और बुध हों तो उतने मास, मंगल हो तो आठ मास, गुरु और शुक्र हो तो उतने वर्ष, राहु केतु हों तो छः मास। षट्पञ्चाशिका (५—५) के अनुसार प्रश्नलग्न से कोई ग्रह जितनी संख्या पर होवे उसको बारह से गुणन करने पर जो गुणनफल हो उतने दिनों में प्रवासी का आगमन हो, अथवा जब ग्रह वक्री हो तब आवे ।।१११।।

द्वितीयमायियासुश्च चन्द्रे केंद्राद्विशेषतः ।
पथिकागमनं ब्रूते मुक्त्वा सप्तमकेन्द्रकम् ।।११२।।

अर्थ—सातवें केन्द्र को छोड़ कर अन्य केन्द्रों से दूसरे स्थानों पर विशेष

करके जब चन्द्रमा आवे तो प्रवासी का आगमन कहे ॥११२॥

व्याख्या—श्लोक १११ में बताया गया है कि जब केन्द्र से दूसरे स्थान पर कोई ग्रह आवे तो पथिक का आगमन कहे। अब चन्द्रमा बारे विशेष कहते हैं कि सप्तम केन्द्र को छोड़ कर जब चन्द्रमा केन्द्र (१, ४, १०) से पणफर स्थानों (२, ५, ११) में जावे तब पथिक का आगमन हो। प्रश्न-भूषण (४. ४) में भी इसी विधि की व्यवस्था की गई है। सप्तम केन्द्र को छोड़ने का अभिप्राय यह है कि सप्तम स्थान से दूसरे अर्थात् अष्टम स्थान में चन्द्रमा प्रवासी को मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट देता है। ॥११२॥

इन्दुः सप्तमगो लग्नात्पथिकं वक्ति मार्गगम्।
मार्गाधिपश्च राश्यर्द्धात्परभागे व्यवस्थितः ॥११३॥

अर्थ—यदि चन्द्रमा प्रश्नलग्न से सप्तम स्थान में हो, और नवमेश किसी राशि के उत्तरार्ध में हो, तो राही को राह में कहना चाहिए। ॥११३॥

व्याख्या—सप्तम और नवम स्थान राही का मार्ग स्थान है। यदि सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो और नवमेश १५ अंश से अधिक हो तो राही मार्ग में है अर्थात् घर की ओर आ रहा है। सप्तम भी मार्ग स्थान है इसलिए यदि सप्तमेश भी १५ अंश से अधिक हो तो भी राही मार्ग में आ रहा है, ऐसा समझना चाहिए। प्रश्नचण्डेश्वर (६—१०) में कहा गया है कि यदि सप्तमस्थ चन्द्र मार्ग (सप्तम, नवम) के स्वामी से युत् वा दृष्ट हो तो प्रवासी उसी समय लौटता है, यथा—

मार्गस्थं पथिकं ब्रूते द्यूने चन्द्रो व्यवस्थितः।
मार्गनाथेन युग्दृष्टः पथिकागमनं तथा ॥

प्रश्नभूषण और प्रश्नशिरोमणि में भी ऐसा ही लिखा है, पर वहाँ मार्गनाथ के अर्थ नवमेश ही किया गया है ॥११३॥

चरलग्ने चरांशे च चतुर्थे चन्द्रमाः स्थितः।
ब्रूते प्रवासिनं व्यक्तं समायातं स्ववेश्मनि ॥११४॥

अर्थ—चरराशि के प्रश्नलग्न में चरराशि का ही नवांश हो और चतुर्थ स्थान में चन्द्रमा हो, तो स्पष्ट कहना चाहिए कि प्रवासी अपने घर आ चुका है ॥११४॥

व्याख्या—कई टीकाकार इस श्लोक का अर्थ यह करते हैं कि यदि चतुर्थभाव में चरराशि हो और उस में चरराशि के नवांश में चन्द्रमा स्थित हो तो प्रवासी घर लौट आया है। ये अर्थ भी ठीक प्रतीत होते हैं। प्रश्न-भूषण (४-५. ६. ७) में लिखा है कि यदि चन्द्रमा चरलग्न में या चरराशि के नवांश में होते हुए चतुर्थ स्थान में हो तो प्रवासी उसी समय में आता है या पत्रिका आती है ॥५॥ यदि गुरु, शुक्र या चन्द्रमा चतुर्थ स्थान में हो, तो राही शीघ्र घर आता है ॥६॥ यदि गुरु और शुक्र प्रश्नलग्न से दूसरे या तीसरे स्थान में हों तो राही घर आ गया है, ऐसा कहना चाहिए ॥७॥ स्मरण रहे कि चतुर्थ स्थान प्रवासी का अपना घर है और उस में चरराशिगत और चर-नवांश में स्थित चन्द्रमा राही को घर लौटा देता है या उसके आने का चिट्ठी, तार आदि आती है ॥११४॥

इति पथिकगमनागमनद्वारम् ॥२५॥

अब आचार्य रोगी के मृत्यु योगों पर प्रकाश डालते हैं—

स्मरे व्यये धने क्रूरे लग्न मृत्यौ रिपौ शशी।
सद्यो मृत्युकरो योगः क्रूरे वा चन्द्रपार्श्वगे ॥११५॥

अर्थ—सातवें, बारहवें, दूसरे पाप ग्रह हों, लग्न, अष्टम और छठे चन्द्रमा हो तो यह योग शीघ्र मृत्यु करने वाला है। अथवा चन्द्रमा के दोनों ओर पापी ग्रह हों तो भी मृत्यु कारक योग है ॥११५॥

व्याख्या—यहाँ मेरे विचार में आचार्य ने चार योग कह दिए

हैं—(१) दूसरे, बारहवें और सप्तम पापग्रह हों और लग्न में चन्द्रमा होने से शीघ्र मृत्यु होती है। कारण यह कि लग्नस्थ चन्द्रमा, पापी ग्रहों के अन्तराल में है और सप्तमस्थ पापी ग्रह से दृष्ट है। इसके अतिरिक्त लग्नभाव (शरीर) भी दोनों ओर से पापी ग्रहों से पीड़ित है। (२) इसी योग में चन्द्रमा यदि अष्टम हो तो भी उस पर धन भाव में स्थित क्रूरग्रह की दृष्टि होने, चन्द्रमा का मृत्युभाव (अष्टम) में होने और लग्न के दोनों ओर पापीग्रह होने से मृत्यु योग बनता है। (३) इसी योग में लग्न दोनों ओर से पाप ग्रहों से पीड़ित है और बारहवें भाव में स्थित पापीग्रह की छटे भाव (रोग भाव) में स्थित चन्द्रमा पर क्रूर दृष्टि होने से मृत्युदायक है। (४) चन्द्रमा के दोनों ओर पापीग्रह होने से मन पीड़ित और लग्न के दोनों ओर पापीग्रह हाने से शरीर भी पीड़ित होने से मृत्यु योग कहा है। इसे भली भाँति समझने के लिए देखो नीचे दी गई कुण्डली नं० १।

अकेला चन्द्रमा (विशेषतः क्षीणचन्द्रमा) भी पापीग्रहों से घिरा हुआ मृत्यु योग के देने वाला है। यदि उन पापी ग्रहों में से एक मार्गी और दूसरा वक्री हो, मार्गी चन्द्रमा की ओर जा रहा हो और वक्री चन्द्रमा की ओर वक्रगति हो तोभी मृत्युयोग हो सकता है। देखो, नीचे दी गई कुंडली ं०२ में

नं० १

नं० २
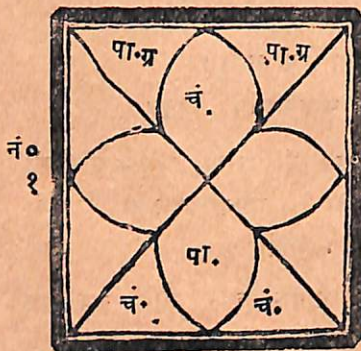
सूर्य छटे स्थान में है और राहु अष्टम स्थान में। सूर्य सदैव मार्गी और राहु वक्री रहता है। राहु जब वक्रगति से सप्तमस्थ चन्द्रमा की राशि में आवे और साथ ही सूर्य भी उसी राशि में हो तो मन को ग्रसने से मत्यु में कोई सन्देह नहीं रह जाता ॥११५॥

लग्ने रविः स्मरे चन्द्रो भवेद्योगोऽप्यमेव हि।
एतेषु रोगिणो मृत्युः सद्यस्त्वन्यस्य चापदः ॥११६॥

अर्थ—लग्न में सूर्य और सातवें स्थान में चन्द्रमा हो तो भी यही (मृत्युकारक) योग होगा। इन योगों में रोगी की मृत्यु और अन्य प्रश्न में विपत्ति हो ॥११६॥

व्याख्या—आचार्य का आशय यह है कि ऊपर श्लोक ११५ तथा ११६ में दिए गए योगों के अनुसार यदि रोगी के रोग सम्बन्धी प्रश्न हो तो निश्चय से रोगी की मृत्यु कहना, और यदि किसी और भाव सम्बन्धी प्रश्न हो तो मृत्यु न कह कर दुःख, क्लेश, व्यथा, शोक, धननाश आदि विपत्ति कहना चाहिए। यहाँ आचार्य ने लग्न में सूर्य और सप्तम में चन्द्रमा होने से मृत्यु-योग माना है। नीलकंठ और जीवनाथ झा ने इससे उलट चन्द्रमा के लग्न में और सूर्य के सप्तम भाव में होने से मृत्यु योग माना है—**चन्द्रे लग्ने कलत्रेऽर्के शीघ्रं रोगी विनश्यति** (प्रश्नभूषण, ११–३) तथा—**विधौ लग्ने स्मरे भानौ रोगी याति यमालयम्** (ताजिक नीलकण्ठी)।

अपने प्रिय पाठकों के हितार्थ हम प्रश्न-शिरोमणि, प्रश्नवैष्णव, प्रश्न-भूषण, ताजिक नीलकंठी तथा अन्य सर्वमान्य ग्रन्थों के आधार पर मृत्यु, रोगनाश, रोग निदान आदि क्लिष्ट विषयों पर विशेष प्रकाश डालते हैं।

यदि पापग्रह की राशि प्रश्नलग्न हो, उस पर पापग्रह का योग या दृष्टि हो और अष्टमस्थान पापग्रह से युक्त वा दृष्ट हो, या पापग्रहों के मध्य

में चन्द्रमा अष्टमस्थ हो तो रोगी की मृत्यु शीघ्र हो। यदि प्रश्नकाल में पापग्रह बारहवें वा आठवें हों और चन्द्रमा १, ६,७, ८ स्थान में हो तो शीघ्र ही रोगी की मृत्यु होती है। इन दोनों योगों में यदि विपरीत हो अर्थात् शुभ ग्रहों का योग हो तो मृत्यु नहीं होती। प्रश्नलग्न में मंगल मेषराशिस्थ वृश्चिक के नवांश में हो और चन्द्रमा से युक्त हो, तो शीघ्र ही रोगी की मृत्यु होती है। प्रश्नलग्न से सप्तम स्थान में यदि शुभ ग्रह हो तो रोग की शान्ति, पापग्रह हो तो रोग की वृद्धि होती है। मिश्र ग्रह हों तो मिश्र फल। यदि सप्तम स्थान में पापग्रह हो और लग्नेश भी पापग्रह से युक्त हो तो भी मरण होता है। यदि लग्नेश निर्बली हो, अष्टमेश बली हो और चन्द्रमा छटे या आठवें भाव में हो तो रोगी का मृत्यु होती है। यदि लग्नेश उदित हो, अष्टमेश दुर्बल हो और लाभेश बली हो तो रोगी रोग से छूट कर दीर्घायु होता है। लग्न में अष्टमेश हो और चन्द्रमा और लग्नेश अष्टम हो तो रोगी की मृत्यु हो। अष्टमेश केन्द्र में हो और लग्नेश सूर्य के द्वादशांश में हो तो मृत्यु अथवा मृत्यु तुल्य कष्ट हो। लग्न, सप्तम और अष्टम भवनों में पापग्रह हों, सौम्य ग्रह बल रहित हों, चतुर्थ या अष्टम भवन में चन्द्रमा हो और चन्द्रमा के पास के दोनों स्थानों में पापग्रह होवें, तो रोगी मृत्यु को प्राप्त होता है।

समस्त रोग-सम्बन्धी प्रश्नों में पहला घर (प्रश्नलग्न) वैद्य का, सातवां घर रोग का, दशवां घर रोगी का और चौथा घर औषधि का है। इसलिए रोग प्रश्नों में प्रश्नलग्न से वैद्य, सप्तम भाव से रोग, दशम स्थान से रोगी और चतुर्थ स्थान से औषधि का विचार करे। प्रश्नलग्न में पापग्रह हो तो वैद्य से और औषधियों से आराम नहीं होगा किन्तु रोग की वृद्धि होगी। यदि बलवान् शुभग्रह लग्न में हो तो वैद्य से औषधि द्वारा रोग शान्त होगा। सातवें घर में पापग्रह हो तो वैद्य और औषधि द्वारा रोग बढ़ जायगा

या रोग में कोई नया रोग खड़ा हो जाता है। सातवें घर में शुभ ग्रह हो तो वैद्य और औषधि से रोग दूर होगा और सुन्दर पथ्य करने से सुख की प्राप्ति होती है। दशवें घर में पापग्रह होवे तो रोगी अपनी चूक से कुपथ्य कर लेने से रोग बढ़ा लेता है, और शुभग्रह दशम भाव में होवे तो वैद्यों और औषधियों से रोग की शान्ति होती है। यदि चतुर्थ स्थान में पापग्रह हो तो वैद्य की औषधि से रोगी का रोग बढ़ता है वा दीर्घ रोग हो जाता है, यदि चतुर्थ भाव में शुभग्रह हो तो वैद्य की औषधि द्वारा रोग नाश होता है।

लग्नेश और दशमेश की मैत्री हो अथवा लग्नगत राशि के तत्त्व की तथा दशमगत राशि के तत्त्व की मित्रता हो, एवं चतुर्थेश और सप्तमेश की मित्रता हो, अथवा चतुर्थगत राशि के तत्त्व की और सप्तमगत राशि के तत्त्व की मित्रता हो, तो रोग का नाश होता है। यदि उक्त स्थानों के स्वामियों की या तत्त्वों की शत्रुता हो, तो रोग का प्रकोप होता है। श्लोक १५, १६, १७ की व्याख्या में ग्रहों के मित्रत्व और शत्रुत्व पर प्रकाश डाला जा चुका है अतः पाठकवृन्द वहाँ से देख लें। बारह राशियों को अग्नि, पृथ्वी, वायु और जल आदि चार तत्त्वों में बाँटा गया है। अतः मेषादि राशियों के तत्त्व भी क्रमशः आग्नेय, पार्थिव, वायवी और जलीय हैं। अर्थात् मेष, सिंह और धनु राशियें आग्नेयत्रयी हैं, वृष, कन्या और मकर, पार्थिव-त्रयी; मिथुन, तुला और कुम्भ, वायवत्रयी; तथा कर्क, वृश्चिक और मीन जलीयत्रयी राशिएँ हैं। पृथ्वी और जल की तथा वायु और अग्नि की आपस में मैत्री है। जल की अग्नि से और पृथ्वी की वायु से शत्रुता है। इस प्रकार पाठकगण अपनी बुद्धि से विचार कर फलादेश कहें।

रोग-निदान—अष्टम भाव में स्थित ग्रह से रोग का निदान करना चाहिए। यदि आठवें स्थान में सूर्य या मंगल हो, तो रक्त और पित्त का प्रकोप हो। बुध हो तो सन्निपात, अजीर्ण; चन्द्रमा हो तो अतासार वा चित्त-

रोग; गुरु हो तो त्रिदोष, उदर विकार, पांडुरोग; शुक्र हो तो कफ, श्लेष्म तथा वीर्य विकार, शनि हो तो चर्म रोग, वातरोग अथवा भूख वा प्यास के कारण मृत्यु; राहु हो तो व्रणरोग अथवा सोका; केतु हो तो व्रणरोग वा रुधिर विकार। अष्टम भाव में सूर्य और चन्द्र हों तो रक्त पित्त; सूर्य मंगल हो तो रक्त बहना; क्रूरग्रह युत बुध हो तो सन्निपात; बुध और गुरु हों तो क्षयरोग; क्रूर युत गुरु हो तो त्रिदोष अर्थात् वात, पित्त और कफ; सूर्य और राहु हो तो दद्री, चम्बल आदि चर्म रोग या कुष्ट (यदि छटे हो तो महाकुष्ट); शनि मंगल हों तो महाकुष्ट; राहु और शनि हों तो वायुरोग, हाथ पाँव का काँपना, गात्रोपघात; चन्द्रमा और शुक्र हों तो सन्निपात; शुक्र मंगल हों तो वीर्य विकार अथवा राजयक्ष्मा (तपेदिक)।

यदि अष्टम भाव में कोई ग्रह न हो तो अष्टम भाव को जो ग्रह बलवान् हो कर देखे उसके अनुसार रोग का अनुमान लगाना चाहिए। अष्टम भाव को सूर्य देखे तो पित्त प्रकोप; चन्द्र देखे तो कफ श्लेष्मादि विकार; मंगल देखे तो रुधिर विकार; बुध देखे तो वायु रोग या वातजन्य विकार; गुरु देखे तो उदर विकार; शुक्र देखे तो वीर्यविकार; शनि देखे तो त्रिदोष, चर्मरोग वा शीतरोग; और राहु केतु देखें तो व्रणरोग, शूलरोग आदि कहे ॥११६॥

इति मृत्युरोगादि द्वारम् ॥२६॥

अब दुर्गभङ्ग (किले का टूटना) पर विचार किया जाता है :—

पृच्छायां मूर्तिगे क्रूरे दुर्गभंगो न जायते।
बलहीनेऽपि वक्तव्यं किं पुनर्बलशालिनि ॥११७॥

अर्थ—दुर्गभंग प्रश्न में यदि लग्न में पापग्रह हो तो क़िला नहीं टूटेगा, निर्बल ग्रह होने पर भी ऐसा कहना और बलवान् ग्रह हो तो कहना ही क्या ॥११७॥

व्याख्या—लग्न और लग्नेश का सम्बन्ध दुर्गपति, पुरेश अथवा प्रति-रक्षक या गोप्ता से है और सप्तम भाव और सप्तमेश का सम्बन्ध दुर्ग पर आक्रमण करने वाले 'आक्रामक' से है। यदि प्रश्नकर्ता प्रश्न करे कि मुझ पर चढ़ाई करने वाले शत्रु से मेरा क़िला टूटेगा या नहीं, तो प्रश्न लग्न में यदि पापग्रह हो तो क़िला नहीं टूटेगा। निर्बल पापग्रह यदि लग्नगत हो तो भी क़िला नहीं टूटेगा, और यदि बली ग्रह लग्नस्थ हो तो बिल्कुल नहीं टूटेगा। ताजिक नीलकंठी में भी लग्न में पापग्रह के होने से दुर्गभंग के अभाव का वर्णन है **प्रश्ने विलग्ने क्रूरे वा दुर्गभंगो न जायते** । प्रश्न शिरोमणि के अनुसार भी यदि लग्न में निर्बली या बली पापीग्रह हो तो दुर्गभंग नहीं हो पाता—**खलेऽबले वा सबले तनौ नो दुर्गस्य भंगो** ॥११७॥

क्षितिपुत्रो विशेषेण राहुर्यदि विलग्नगः ।
शक्रेणापि तदा दुर्गभङ्गं कर्तुं न शक्यते ॥११८॥

अर्थ—विशेष करके पृथ्वीपुत्र (मंगल) या राहु यदि लग्न में हो तो इन्द्र भी क़िला तोड़ने में असमर्थ है ॥११८॥

व्याख्या—पिछले श्लोक में आचार्य ने कहा है कि यदि कोई भी पापग्रह लग्न में हा तो दुर्गभंग नहीं हो सकता। अब आचार्य कहते हैं कि यदि अन्य पापग्रहों (सूर्य, शनि) की अपेक्षा मंगल या राहु प्रश्नलग्न में हो तो देवताओं का राजा इन्द्र भी क़िले को नहीं तोड़ सकता, इतर मनुष्य की तो बात ही क्या है। क्यों ? इसलिए कि मंगल 'बल का कारक' (**सत्वं कुजो** वृहज्जातक २. १) तथा बलसमूह का पति अथवा 'सेना नायक' (**क्षितिसुतो नेता**—वृहज्जातक २. १) है। लग्न (दुर्गपति) में बलकारक नेता के हाने से अर्थात् प्रति रक्षा का प्रबल प्रबन्ध होने से क़िले की रक्षा होगी अतः दुर्गभंग न होगा। पराशरादि महर्षियों ने राहु को ꕥ'सेना' या बल का उत्कर्ष

ꕥसेना स्वर्भानुपुच्छकौ (पराशर)

(राहुः बलोत्कर्षितम्) माना है अतः सेना द्वारा सुरक्षित किले का भंग राहु के लग्नस्थ होने से नहीं हो सकता। इन्हीं कारणों के आधार पर सम्भवतः आचार्य ने लग्न में मंगल और राहु की स्थिति को विशेष स्थान दिया है। ।।११८।।

सप्तमो यदि राहुः स्याद्दुर्गं झटिति भज्यते।
मूर्तौ क्रूरः शुभोऽमुष्मिन् क्रूरदृष्टिर्न शोभना ।।११९।।

अर्थ—यदि राहु सप्तमभाव में हो तो किला शीघ्र ही टूट जाता है क्योंकि लग्न में पापग्रह शुभ होता है और उस पर (लग्न पर) पापग्रह की दृष्टि शुभ नहीं होती ।।११९।।

व्याख्या—सप्तम स्थान आक्रामक अर्थात् हमला करने वाले या 'यायी' का है। राहु की क्रूर दृष्टि लग्न (दुर्ग) पर होने से दुर्ग के लिए अहितकर है। श्लोक ११८ की व्याख्या के अनुसार 'राहु की क्रूर दृष्टि' का तात्पर्य यह है कि शत्रु की सेना प्रबल है। इसी कारण दुर्गभंग शीघ्र होगा। सारांश यह कि लग्न में शुभग्रह की स्थिति होने से सप्तम भाव पर शुभ दृष्टि के कारण शत्रु को सफलता प्राप्त होती है, और लग्न में क्रूर ग्रह होने से सप्तम पर क्रूर दृष्टि के कारण शत्रु को असफलता का मुँह देखना पड़ता है। अतः लग्न में शुभग्रह होने से और सप्तम में पापग्रह होने से दुर्गभंग और इसके विपरीत होने से दुर्गभंग नहीं हो सकता। यही बात आचार्य ने श्लोक ११७ में कही है और यही श्लोक १२६ में कहेंगे ।।११९।।

मूर्तिसप्तमयोः क्रूराभावे लग्नपतिर्व्यये।
षष्टेऽष्टमे द्वितीये वा तदा दुर्गं न भज्यते ।।१२०।।

अर्थ—यदि लग्न और सप्तमभाव में कोई पापग्रह न हो और लग्नेश बारहवें, छटे, आठवें या दूसरे हो तो दुर्गभंग नहीं होता ।।१२०।।

व्याख्या—आचार्य स्पष्ट कर चुके हैं कि लग्न में पापग्रह होने से दुर्गभंग का अभाव और सप्तम भाव में पापग्रह होने से दुर्गभंग होगा। अब

आचार्य कहते हैं कि यदि प्रश्नकालीन लग्न या सप्तम भाव में कोई पापग्रह न हो तो, यदि प्रश्नलग्नेश दूसरे और त्रिक स्थान में होगा तो भी दुर्गभंग नहीं होगा। यह युक्तिसंगत भी प्रतीत होता है क्योंकि यदि लग्न में पाप ग्रह होने से शुभ फल होता है तो लग्नेश के त्रिकभवन में जाने से शुभ फल ही होगा। दूसरा स्थान भी मारकभाव है इसलिए दूसरे भाव में लग्नेश के जाने से भी दुर्गभंग न होगा। जहाँ अन्य भावों के फलादेश में भावेश के शत्रु, त्रिकादि स्थानों में जाने से भाव की हानि होती है, वहाँ दुर्गभग प्रश्न में भाव की वृद्धि होती है ॥१२०॥

इति दुर्गभंगद्वारम् ॥२७॥

अब चौर्यादि विषयों पर प्रकाश डालते हैं :—

एवं चौर्याय यामीति मूर्तौ क्रूरः शुभावहः।
दृष्टिः शुभावहाऽत्रापि न क्रूरस्य कदाचन ॥१२१॥

अर्थ—इसी प्रकार, "मैं चोरी करने जाता हूँ" इस प्रश्न में लग्न में पापीग्रह शुभ (लाभप्रद) है। किन्तु यहाँ पर भी लग्न पर पापग्रह की दृष्टि कदापि शुभकारक (लाभदायक) नहीं होती ॥१२१॥

व्याख्या—जिस प्रकार दुर्गभंग प्रश्न में लग्न में पापग्रह शुभ, शुभग्रह, पापफलप्रद तथा शुभग्रह की दृष्टि शुभफलप्रद और पापग्रह की दृष्टि पापफलदायक होती है उसी प्रकार चोरी करने वाले के लिए प्रश्नलग्न में क्रूरग्रह शुभकारक, शुभग्रह पापफलदायक और क्रूरग्रह की दृष्टि पापफलदायक तथा शुभग्रह की दृष्टि शुभकारक होती है। इसी प्रकार लग्नेश लग्न को देखे, लग्न पर क्रूरग्रह की दृष्टि न हो तो चौर्य कर्म में सफलता होगी, अन्यथा नहीं। यदि शुभग्रह की दृष्टि रहित लग्नेश दूसरे, छटे, आठवें, बारहवें स्थानों में हो तो चोर को क्रम से हानि, भय, बन्धन और मृत्यु प्राप्त हो। ऐसा विचार प्रश्नशिरोमणि ग्रन्थ का है ॥१२१॥

विवादे शत्रुहनने रणे संकटके तथा ।
क्रूरे मूर्तौ जयो ज्ञेयः क्रूरदृष्टया पराजयः ।।१२२।।

अर्थ—लड़ाई झगड़े में, शत्रु को मारने में, युद्ध में तथा संकट में यदि लग्न में क्रूर ग्रह हो तो जय और क्रूरग्रह की दृष्टि हो तो पराजय होती है ।।१२२।।

व्याख्या—भाव यह है कि वाद-विवाद, शत्रुदमन, युद्ध, सकट (अकस्मात् कष्ट, व्याधि आदि) में यदि पापीग्रह लग्नस्थ हो तो इन क्रूर-कर्मों में जय और यदि पापग्रह को दृष्टि लग्न पर हो तो पराजय हो । वाद-विवाद, रणसंग्राम, चौर्यादि क्रूरकृत्य होने के कारण लग्न में क्रूरग्रह का होना उनकी सफलता के लिए अनिवार्य है, अन्यथा नहीं ।। प्रश्नशिरोमणि में भी ऐसा ही मत प्रकट किया गया है, यथा—**विवादसंग्रामरिपुप्रणाशदुर्ग-प्रभंगादिषु चेत्खलोऽङ्गे शुभाय नो दृक् ।।१२२।।**

अपरेष्वपि चौर्यादियोगेष्वेवं विना ग्रहम् ।
मूर्तौ सर्वत्र वक्तव्यं चौर्यप्रश्ने शुभग्रहे ।।१२३।।
मूर्तौ सति न चौर्यं स्यात्सफलं केवलं भवेत् ।
शरीरे मुख्यकुशलं शुभयोगप्रभावतः ।।१२४।।

अर्थ—इसी प्रकार चोरी आदि के अन्य योगों में भी यदि लग्न में कोई ग्रह न हो तो कहना चाहिए । चोरी के प्रश्न में यदि शुभ ग्रह लग्न में हो तो चोरी में सफलता न हो, केवल शुभ ग्रह के योग के प्रभाव से शरीर कुशल रहे या कोई और शुभ फल प्राप्त हो ।।१२३-२४।।

व्याख्या—आचार्य का आशय है कि चोरी, वाद-विवाद, शत्रुहनन, रण संकटादि विषयक प्रश्नों में लग्न में पापग्रह या शुभग्रह की दृष्टि होने से सफलता तथा शुभग्रह या पापग्रह की दृष्टि हाने से उक्त क्रूर कर्मों में असफलता होगी । यदि लग्न में शुभ या अशुभ ग्रह का अभाव हो तो केवल

दृष्टि द्वारा फलादेश कहना चाहिए, यथा लग्न पर शुभग्रह की दृष्टि से शुभ-फल एवं पापग्रह की दृष्टि से अशुभ फल। चोरी के प्रश्न में आचार्य विशेष कहते हैं कि यदि लग्न में शुभग्रह हो तो चोर का शरीर कुशल रहेगा या उसे चोरी के अतिरिक्त कोई और शुभफल प्राप्त हो क्योंकि लग्न में शुभग्रह की स्थिति के कारण शरीर या किसी और विषय का सुख हो किन्तु चोरी के काम में असफलता ही हो ।। १२३—१२४ ।।

रणे चौर्यादिहनने धातुवादादि कर्मसु ।
क्रूराक्रूरसमायोगान्मूर्तविव विचार्यते ।। १२५ ।।

अर्थ—युद्ध में, चोरी में, शत्रु को मारने में और धातुवादादि कर्मों में केवल लग्न में पाप और शुभग्रह के योग द्वारा ही विचार किया जाता है ।। १२५ ।

व्याख्या—आचार्य का आशय यह है कि संग्राम, रिपुहनन, चोरी जुआ तथा वाद-विवाद, संकट, धातुवादादि समस्त कर्मों में केवल लग्न के साथ शुभाशुभ ग्रह के सम्बन्धमात्र से ही फलादेश कहना चाहिए, किसी अन्य भाव से नहीं। यहाँ लग्न के साथ संयोग या सम्बंध का भाव है लग्न में ग्रह की स्थिति, दृष्टि आदि। यदि कोई प्रश्न करे कि 'मैं शत्रु की हत्या करने जाता हूँ, क्या मैं सफल हूँगा या नहीं ?' तो लग्न में क्रूरग्रह हो या लग्न पर शुभ-ग्रह की दृष्टि हो तो जय और लग्न में शुभग्रह हो और लग्न पर पापग्रह की दृष्टि हो तो असफलता होगी। इसी प्रकार धातुवाद करने वाला यदि धातु-वाद सम्बन्धी प्रश्न करे तो भी लग्न में पापग्रह शुभ और पापग्रह की दृष्टि अशुभ, शुभग्रह अशुभ और शुभग्रह की दृष्टि शुभ होती है। अर्थात् पापग्रह की लग्न में स्थिति होने अथवा लग्न पर शुभदृष्टि होने से धातुवादी को लाभ अन्यथा शुभग्रह की स्थिति और पापग्रह की दृष्टि हो तो हानि होगी। प्रश्न-शिरोमणि में भी यही मत प्रकट किया गया है, यथा—**खलो लग्ने शुभः**

पापेक्षणं नो यदि लग्नपः । तनुं पश्येद्विना पापैः कर्त्तुः सौख्यं न चान्यथा ।। अर्थात् 'लग्न में पापग्रह शुभ और पापग्रह का दृष्टि अशुभ होती है । यदि लग्नेश लग्न को देखे और पापग्रह न देखें तो भी धातुवाद करने वाले को सुख होता है, अन्यथा नहीं ।' इसी तरह युद्ध, संकट, विवादादि प्रश्नों पर विचार करना चाहिए ।। १२५ ।।

मूर्तौ क्रूरग्रहः श्रेयाञ्छ्रेयसी क्रूरदृङ् न हि ।
शुभो न शोभनो मूर्तौ शुभदृष्टिस्तु शोभना ।। १२६ ।।

अर्थ—लग्न में पापग्रह श्रेष्ठ होता है किन्तु पापग्रह की दृष्टि शुभ नहीं होती । शुभग्रह लग्न में शुभ नहीं होता किन्तु शुभग्रह की दृष्टि शुभ होती है ।। १२६ ।।

व्याख्या—इस श्लोक में इस द्वार में आए सभी श्लोकों का सारांश दिया गया है । आचार्य ने इस बात पर बल दिया है कि चोरी, वादविवाद, संकट, धातुवाद, शत्रुहनन आदि क्रूरकर्मों की सिद्धि के लिए लग्न में पापग्रह की स्थिति और शुभग्रह की दृष्टि अनिवार्य है, और इसके विपरीत होने से वाञ्छनीय कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती । लग्न में शुभग्रह की स्थिति इन क्रूर कर्मों की साधक नहीं होती और न ही क्रूरग्रह की दृष्टि शुभ हो सकती है । भाव यह कि उक्त प्रश्नों में शुभग्रह की दृष्टि कार्यसाधक और अशुभग्रह की दृष्टि विघ्नकारी, तथा पापग्रह की स्थिति कार्यसाधक और पापग्रह का दृष्टि विघ्नकारी होती है । प्रश्नशिरोमणि नें भी कहा है—**पापेंगे सौम्यदृष्टिर्वा चौर्यवादाग्रहात्सुखम् । तदान्यथा भयं हानिर्बंधनं वा समादिशेत्** । अर्थात् 'लग्न में पापग्रह हो वा शुभग्रह की दृष्टि हो तो चोरी, वाद, आग्रह तथा लड़ाई में सुख होता है और इस से विपरीत हो तो भय, हानि या बन्धन कहे' ।। १२६ ।।

इति चौर्यादिस्थानद्वारम् ।। २८ ।।

अब क्रय विक्रय, समर्घमहर्घादि विषयों पर प्रकाश डालते हैं—

क्रेता लग्नपतिर्ज्ञेयो विक्रेताऽऽयपतिः स्मृतः ।
गृह्णाम्यहमिदं वस्तु सति प्रश्ने अमूदृशे ॥ १२७ ॥

अर्थ—"मैं इस वस्तु को खरीदूं या नहीं ?" ऐसे प्रश्न में लग्नेश क्रेता (ग्राहक, खरीदने वाला) और आयभाव (लाभभाव, एकादशस्थान) का पति विक्रेता (बेचने वाला) होता है ॥ १२७ ॥

व्याख्या—यदि कोई प्रश्न करे कि अमुक पदार्थ ख़रीदने से मुझे लाभ होगा कि हानि, तो ऐसे प्रश्न में लग्नेश ख़रीदार होता है और लाभेश बेचने वाला होता है । भाव यह है कि क्रय विक्रय आदि प्रश्नों में तात्कालिक प्रश्न-लग्नेश क्रेता (ख़रीदने वाला) और तात्कालिक एकादशेश (लाभेश) विक्रेता या बेचने वाला होता है । साधारणतः प्रश्नशिरोमणि, ताज़िक नीलकण्ठी आदि ग्रन्थों में भी लग्नेश और लाभेश को क्रमशः क्रेता और विक्रेता माना गया है, किन्तु प्रश्नभूषण (१५—१) और अन्य ग्रन्थों के अनुसार लग्न और लग्नेश क्रेता है और लाभभाव और लाभेश विक्रेता है । आचार्य पद्मप्रभ सूरि का भी यही मत प्रतीत होता है अन्यथा '**बलशाली विलग्नं चेद्**' (श्लोक १२८) तथा '**आयस्थाने बलवति**' (श्लोक १२९) आदि वाक्य निरर्थक हो जाएँ ॥ १२७ ॥

बलशालि विलग्नं चेद् गृह्यते यत्क्रयाणकम् ।
तस्मात्क्रयाणकाल्लाभः प्रष्टुर्भवति निश्चितम् ॥ १२८ ॥

अर्थ—यदि लग्न बलवान् हो तो जो वस्तु ख़रीदी जाए उस खरीदी हुई वस्तु से प्रश्नकर्त्ता को निश्चय लाभ होता है ॥ १२८ ॥

व्याख्या—यहां पर 'क्रयाणक' शब्द का अर्थ है 'ख़रीदी हुई वस्तु' अर्थात् वह पदार्थ जो मोल देकर ख़रीदा जाय । यहाँ आचार्य का भाव यह है कि लाभार्थ 'क्रयाणक' तब ख़रीदनी चाहिए जब लग्न और लग्नेश बलवान् हों । 'लग्न' को उस अवस्था में बलवान् कहा जाता है जब वह शुभग्रह या

स्वामी से युत् या दृष्ट हो। इसी प्रकार लग्नेश तब बलवान् होता है जब वह उदित, स्वोच्च, स्वक्षेत्री, मित्रक्षेत्री, वर्गोत्तम अथवा शुभग्रह से युक्त या दृष्ट हो। यदि लग्न शुभग्रह या स्वामी से युत् या दृष्ट न हो और पापीग्रह से युत् या दृष्ट हो तो लग्न बलहीन होता है। एवं लग्नेश अस्त, वक्री, नीच, शत्रुक्षेत्री हो तो बलहीन होता है। लग्न और लग्नेश के बलवान् होने पर प्रश्नकर्त्ता को वस्तु खरीदने से लाभ होता है, यह आचार्य का आशय है ॥ १२८ ॥

विक्रीणाम्यमुकं वस्तु प्रश्नेऽप्येवंविधे सति।
आयस्थाने बलवति विक्रेतव्यं क्रयाणकम् ॥१२९॥

अर्थ—"मैं अमुक पदार्थ को बेचूं या न ?"—इस प्रकार के प्रश्न में भी लाभ भाव के बलवान् होने पर खरीदी हुई चीज़ बेचनी चाहिए ॥१२९॥

व्याख्या—यदि कोई प्रश्न करे कि मैं अमुक वस्तु को बेचना चाहता हूँ, लाभ होगा या नहीं ? तो लाभस्थान यदि शुभग्रह या स्वामी से युत् वा दृष्ट हो और लाभेश स्वोच्च, स्वक्षेत्री, मित्रक्षेत्री, शुभग्रह से युक्त या मित्र के षड्वर्ग में हो तो खरीदी हुई वस्तु के बेचने से अवश्य लाभ होता है। इसी प्रकार यदि लाभभाव शुभग्रह या स्वामी से युक्त या दृष्ट न हो, पापी-ग्रह से युक्त वा दृष्ट हो और लाभेश अस्त, वक्री, नीच, शत्रुक्षेत्री होने से बलहीन हो तो संग्रह किए हुए पदार्थ के बेचने से हानि होती है। प्रश्नभूषण (१५—३) में भी ऐसा ही कहा गया है, यथा—

शुभस्वामियुते लाभे विक्रयाल्लाभमादिशेत्।
लाभेशे शुभवर्गाढ्ये मित्रक्षेत्रादिकेऽपि च॥

अर्थात् एकादश स्थान यदि शुभग्रह या स्वामी से युक्त हो और लाभेश शुभग्रह या मित्र के षड्वर्ग में हो तो बेचने से लाभ होता है ॥१२९॥

स्वक्षेत्रे तु बलं पूर्णं पादोनं मित्रभे ग्रहे ।

अर्धं समगृहे ज्ञेयं पादं शत्रुगृहे स्थिते ॥१३०॥

अर्थ—अपने गृह में पूर्ण बल, मित्र के गृह में एक पाद कम (अर्थात् त्रिपादबल), सम के गृह में आधा और शत्रु के गृह में एक पाद बल जानना चाहिए ॥१३०॥

व्याख्या—लाभादि की मात्रा जानने के लिए यह श्लोक उद्धृत किया गया है । क्रय-विक्रय में लाभ कितना होगा, यह ग्रह के बलाबल को देख कर कहना चाहिए । यदि ग्रह अपनी राशि पर हो तो पूर्ण बल (पूरा लाभ), मित्र की राशि पर हो तो 'त्रिपाद बल' (तीन चौथाई लाभ), समग्रह की राशि पर हो तो आधा, और शत्रु की राशि पर हो तो 'एकपाद' अर्थात् चौथा भाग लाभ होता है। स्मरण रहे कि यह स्थानबल शुभ तथा पापग्रहों का समान होता है, किन्तु फल में विपरीतता होती है अर्थात् शुभ ग्रहों का जितना स्थानबल हो उतना ही शुभ फल होता है और पापग्रहों का शुभ फल विपरीत जानना । यदि 'शुभग्रह' अपनी राशि में हो तो पूर्ण शुभफल', समग्रह की राशि में 'अर्द्ध शुभफल', मित्रग्रह की राशि में 'त्रिपाद शुभफल' और शत्रुराशि में 'एकचरण शुभफल' होता है । यदि पाप-ग्रह अपनी राशि में हो तो उसका 'एकपाद' अशुभफल, मित्रराशि में 'आधा अशुभफल,' समग्रह की राशि में 'तीन पाद अशुभ फल' एवं शत्रुराशि में सम्पूर्ण अशुभफल' होता है ॥१३०॥

अब पदार्थ की महर्घता (तेज़ी) और समर्घता (मन्दी) की अवधि पर विचार करते हैं :—

समर्घं वा महर्घं वा वस्तु मे कथयामुकम् ।

पृच्छायां येन खेटेन शुभत्वं प्रतिपाद्यते ॥१३१॥

खेटोऽसौ यावतो मासान् याति लग्नस्य सौम्यताम् ।

विधत्ते तावतो मासान्समर्घं ब्रुवते बुधाः ॥१३२॥

अर्थ—'अमुक वस्तु की समर्घता (मन्दी) या महर्घता (तेज़ी) मुझे बताओ,' इस प्रश्न में जिस ग्रह के कारण लग्न को शुभत्व प्राप्त हुआ हो वह ग्रह जितने मास तक लग्न को शुभत्व प्रदान करे उतने ही मास पर्यन्त उस वस्तु की समर्घता (मन्दा) होगी, ऐसा पंडित लोग कहते हैं ॥१३१–१३२॥

व्याख्या—भाव यह है कि मन्दा तेज़ी के प्रश्न में लग्न के बल को देख कर फल कहना चाहिए। लग्नेश या शुभग्रह जितने महीनों तक लग्न को सबल करता रहे, उतने महीने तक मन्दी होती है, अन्यथा तेज़ी। उदासीन हो तो समभाव रहता है। ताज़िक नीलकंठी में भी कहा है कि यदि लग्न स्वस्वामि शुभ युक्त दृष्ट हो, केन्द्र में शुभ पाप ह हों तो समर्घ (मन्दा) और लग्न निर्बल हो, केन्द्र में पापग्रह हों तो महर्घ (तेज़ी) होती है। यथा—**लग्ने वलाढ्ये निजनाथ-सौम्यैर्युक्तेक्षिते केंद्रगतैः शुभैश्च। सर्वैः समर्घं विवलै विलग्ने केंद्रेषु पापैः सकलं त्वनर्घ्यम्॥** प्रश्नभूषण (१५ ४. ५) में भी इस विचारधारा की पुष्टि की गई है, यथा—**समर्घं वा महर्घं स्यादिति प्रश्ने विशेषतः। लग्नस्य सौम्यतां ज्ञात्वा फलं ब्रूयाद्विचक्षणः ॥४॥ ग्रहोऽसौ यावतो मासाविन्धत्तेऽङ्गस्य सौम्यताम्। समर्घं तावतो मासानन्यथा व्यत्ययं वदेत् ॥५॥** यही मत प्रायः सर्वमान्य समझा जाता है ॥१३१–१३२।

अथासावशुभश्चित्यः कियद्भिर्वासरैरयम्।
सौम्यभावं विलग्नस्य विधास्यति विनिश्चितम्॥१३३॥

अर्थ—तदनन्तर अशुभ ग्रह का विचार करे कि यह कितने दिनों में लग्न को सौम्यत्व प्रदान करेगा ॥१३ ॥

व्याख्या—भाव यह है कि यदि प्रश्नलग्न अपने स्वामी या शुभ ग्रह से युक्त या दृष्ट न हो और पापग्रह से युक्त या दृष्ट होने से दूषित हो तो पदार्थ तेज़ होगा। यह तेज़ी उतने दिन पर्यन्त रहेगी जितने दिन में वह प्रश्नलग्न शुभत्व को प्राप्त होगा, अर्थात् तेज़ी उस समय तक रहेगी जब तक

पापग्रह से प्रश्नलग्न युक्त या दृष्ट रहेगा ।।१३३।।

ज्ञातव्या दिवसैर्मासा मासैस्तावद्भिरस्य हि ।
समर्घता वस्तुनो हि प्रतिपाद्या विचक्षणैः ।।१३४।।

अर्थ—इस प्रकार पूर्व प्रकार से दिन आएँ तो उतने मास तक उस वस्तु की समर्घता रहेगी, ऐसा चतुर लोग कहें ।।१३४।।

व्याख्या – भाव यह है कि जितने दिनों तक लग्न शुभत्व रहेगा उतने मास तक समर्घता और जितने दिनों तक लग्न का अशुभत्व रहेगा उतने दिनों तक महर्घता रहेगी । प्रश्नशिरोमणि में भी कहा है कि **'यावद्धस्रं स्वोच्च मित्रर्क्षसंस्थः सौम्योऽङ्गे तावन्ममासाः समर्घम् पापैश्चैवं स्यान्महर्घो ।'** अर्थात् 'स्वक्षेत्री, उच्च, मित्रराशिस्थ शुभग्रह जितने दिन लग्न में रहता है उतने महीनों तक समर्घ रहता है और इसी प्रकार पापग्रह होने से महर्घ रहता है' ।।१३४।।

अधिष्ठातुर्बलं ज्ञेयं लग्ने स्वामिविवर्जिते ।
बलहीने त्वधिष्ठातुः प्राहुः स्वामिबले बलम् ।।१३५।।

अर्थ—यदि लग्न स्वामी से वर्जित अर्थात् युक्त दृष्ट न हो तो उस वस्तु का जो ग्रह स्वामी हो उसके बल का विचार करे । यदि वस्तु का स्वामी निर्बल हो तो लग्न के स्वामी के बल को लग्न का बल जानना चाहिए ।।१३५।।

व्याख्या—क्रय विक्रयादि प्रश्नों में वस्तु के मन्दा तेजी का आधार लग्न के सबलत्व और निर्बलत्व पर है । यदि प्रश्नलग्न सबल हो तो मन्दी, निर्बल हो तो वस्तु तेज़ होती है । आगे श्लोक १३७ में आचार्य ने स्पष्ट कर दिया है कि यदि लग्न लग्नेश या शुभग्रह से युक्त या दृष्ट हो तथा केन्द्र में अशुभग्रह हों तो 'सबल' होता है । पापग्रह से युक्त या दृष्ट और केन्द्र में पापग्रह होने से 'लग्न' निर्बल कहाता है । इस श्लोक में आचार्य ने यह मत प्रस्तुत किया है कि यदि लग्न निर्बल हो तो जिस पदार्थ का समर्घ महर्घ

देखना हो उसका बल लेना चाहिए और यदि उस वस्तु का स्वामी भी निर्बल हो तो लग्न (और लग्नेश) के बल को ग्रहण करना चाहिए। पर हमारे मत में लग्न और वस्तु के स्वामी अर्थात् दोनों भावों के बलाबल का चिन्तन करके फलादेश कहना चाहिए।

कौन ग्रह किस वस्तु का स्वामी है, यह जानने के लिए नीचे ग्रन्थान्तर से लिखते हैं।

सुगन्धि द्रव्य, रस और चिकने पदार्थों के स्वामी सूर्य हैं। रसदार पदार्थों के स्वामी चन्द्रमा हैं। कोषधान्य (चना, अरहर, मसूरी, चावल इत्यादि) और मूँगा के स्वामी मंगल हैं। वंशपात्र और दालों का स्वामी बुध है। जौ गेहूं, सरसों, सोना, ईख, सस्यें और सब पीले धानों के स्वामी गुरु हैं। धान्यों के बोने और जमाने वाला और सब प्राणियों का स्वामी शुक्र है। उड़द (माश), कोदों, कौनी (कंगनी), नमक, तिल और कृष्ण वस्तुओं का स्वामी शनि है। जैसे—सोने और उड़द के स्वामी क्रमशः गुरु और शनि हैं। अतः 'लग्न' के बलाबल का विचार करते हुए गुरु और शनि के बलाबल का विचार करके ही सोना और माश की मन्दा तेज़ी का अनुमान लगाना चाहिए ॥१३५॥

क्रयाणकानां पृच्छायां सौम्या ज्ञेया महात्मभिः।
समर्घं सबले लग्ने महर्घमबले पुनः ॥१३६॥

अर्थ—क्रयविक्रय प्रश्न में यदि प्रश्नकालीन लग्न बलवान् हो तो समर्घता (मन्दा), निर्बल हो महर्घता (तेज़ी) जानी जाती है, ऐसा महात्माओं ने कहा है ॥१३६॥

व्याख्या—इस श्लोक में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि प्रश्नकालीन लग्न बलवान् हो अर्थात् अपने स्वामी या शुभ ग्रह से युत् दृष्ट हो और केन्द्र में शुभग्रह हों तो वस्तु सस्ती हो जायगी इसलिए ख़रीदनी चाहिए.

बाद में बेचने से निश्चय लाभ होगा। यदि लग्न अपने स्वामी से युक्त वा दृष्ट न हो और पापी ग्रह लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो और केन्द्र में पापग्रह हों तो वह वस्तु तेज़ होकर बाद में मन्दी होगी। इसलिए ख़रीदनी नहीं चाहिए। प्रश्नभूषण (१६—११) के कर्त्ता न भी ऐसा ही लिखा है—'सबले प्रश्नलग्ने तु समर्घं बिबले न हि' अर्थात् यदि 'प्रश्नलग्न सबल हो तो मन्दी, अन्यथा तेज़ी होती है' ॥१३६॥

सौम्यदृष्टं स्वामिदृष्टं सौम्यकेन्द्रे युतं शुभैः।
सबलं ब्रुवते लग्नमबलं त्वन्यथा बुधाः ॥१३७॥

अर्थ—प्रश्नलग्न शुभग्रहों या स्वामी से युक्त या दृष्ट हो और केन्द्र में शुभग्रह हों तो 'सबल', विपरीत हो तो निर्बल होता है, ऐसा ंडित लोग कहते हैं ॥१३७॥

व्याख्या—इस श्लोक द्वारा यह निर्णय किया गया है कि 'सबल' और 'निर्बल' लग्न की क्या पहचान है। यदि प्रश्नकालीन लग्न में शुभग्रह हो या लग्न को शुभग्रह देखे, या लग्नपति लग्न में हो, या लग्नेश लग्न को देखे और केन्द्र में शुभग्रह हों तो लग्न बलवान् होता है। इसके विपरीत यदि लग्न पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो, लग्नेश लग्न को न देखता हो और न ही लग्न में लग्नेश हो, केन्द्र में पापग्रह हों तो 'लग्न' निर्बल जानना। हम पहले उपयुक्त स्थान पर कह आए हैं कि क्रयविक्रय सम्बन्धी प्रश्नों में 'लग्न' और 'लग्नेश' दोनों को ही लेना चाहिए। अतः लग्नेश यदि स्वोच्च, उदय, शुभ-ग्रहयुक्तदृष्ट या षड्बल सहित हो तो भी 'लग्न' को बलवान् जानना। एवं यदि लग्नेश अस्त, नीच, वक्री, पाप ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो 'निर्बल' समझना ॥१३७॥

इति क्रयबिक्रयसमर्घमहर्घद्वारम् ॥२६॥

अब नौका, मृत्यु और बन्धन पर विचार किया जाता है—

मृत्युर्घरणकं नौश्च फलेन सदृशं त्रयम् ।
म्रियते येन योगेन तेन योगेन मुच्यते ॥१३८॥
क्षेमेण नौः समायाति मृत्युयोगे समागते ।
आमयावी स म्रियते बद्धः शीघ्रेण मुच्यते ॥१३९॥

अर्थ—मृत्यु, बन्धन और नाव (जहाज़) तीनों फलादेश में समान हैं। जिस योग द्वारा मरण होता है उसी योग द्वारा छुटकारा (बन्धन से मोक्ष) होता है ॥१३८॥

मृत्ययोग के आने पर जहाज़ सुखपूर्वक आता है, बन्दी शीघ्र ही मुक्त होता है, और रोगी मरता है ॥१३९॥

व्याख्या—छब्बीसवें द्वार में आचार्य ने रोगी के मरण सम्बन्धी कुछ योग दिए हैं। आचार्य का भाव यह है कि रोगी जिस योग के कारण मृत्यु को प्राप्त होता है उसी योग के कारण बन्दी कैद से छूटता है और नाव सम्बन्धी प्रश्न में उसी योग के कारण नौका का सुखपूर्वक आगमन होता है। श्लोक ११५ के अनुसार प्रश्नलग्न से दूसरे, सातवें और बारहवें भाव में पापग्रह होने और लग्न या छटे या बारहवें स्थान में चन्द्रमा के होने से रोगी का मरण होता है।

यदि कोई बन्धन या जहाज़ के विषय में प्रश्न करे और उक्त योग हो तो शीघ्र ही बन्धन से छुटकारा प्राप्त हो और जहाज़ का सुखपूर्वक आगमन हो। श्लोक ११६ के अनुसार लग्न में सूर्य और सातवें स्थान में चन्द्रमा के हो से रोगी का मरण होता है। इसी प्रकार प्रश्नकालीन लग्न में सूर्य हो और सातवें चन्द्रमा हो तो कैदी कैद से मुक्त होता है और जहाज़ भी सुखपूर्वक लौटता है। अतः आचार्य ने ठीक ही कहा है कि मरण, नौका और बन्धन फलादेश में तुल्य हैं। इसी प्रकार और जो मरण योग हों उन में बन्दी

बन्धन से मुक्त होता है और जहाज़ निर्विघ्न वापिस आता है ॥१३८–१३९॥

अब नौका सम्बन्धी चार प्रकार के प्रश्नों को कहते हैं—

क्षेमायात वहित्रस्य बुडनं प्लवनं जले ।
पण्यव्यवहृतौ लब्धिर्नाविप्रश्नचतुष्टयम् ॥१४०॥

अर्थ—नौका का कुशलपूर्वक आगमन, जल में डूबना, वायु आदि के वेग से इधर उधर घूमते रहना, और लादे हुए सौदे से लाभादि; ये नौका सम्बन्धी चार प्रकार के प्रश्न होते हैं ॥१४०॥

व्याख्या—स्पष्ट है ! अगले चार श्लोकों में इन चार प्रकार के प्रश्नों पर प्रकाश डाला गया है ॥१४०॥

अब नौका के कुशलपूर्वक आने और उसमें लादे हुए पदार्थों के व्यवहार बारे फलादेश कहते हैं—

क्षेमागमनपृच्छायां मृत्युयोगोऽस्ति चेत्तदा ।
क्षेमेणायाति नौः पण्यलाभो व्यवहृतौ भवेत् ॥१४१॥

अर्थ—कुशलपूर्वक आगमन प्रश्न में यदि मृत्युयोग हो तो नौका कुशलपूर्वक आती है और लाई गई वस्तु के व्यवहार द्वारा लाभ होता है। ॥१४१॥

व्याख्या—श्लोक १४० में कहे गए चार प्रश्नों में से आदि (पहले) और अन्तिम अर्थात् चौथे प्रश्न के विषय में यहाँ विचार प्रस्तुत किया गया है। भाव यह है कि यदि श्लोक ११५–११६ में कहे गए मृत्यु योगों में से कोई भी योग प्रश्नकुण्डली में हो तो नौका निर्विघ्न लौटती है और उसमें लाई गई वस्तु के व्यवहार से लाभ होता है । नौका सम्बन्धी प्रश्न प्रायः अष्टम स्थान से देखे जाते हैं क्योंकि लग्नश और अष्टमेश के पारस्परिक सम्बन्ध मात्र से ही मृत्युयोग बनते हैं। आचार्य पद्मप्रभु सूरि का भी यही मत है जो कि श्लोक १४२–१४३ से स्पष्ट होता है। इसी कारण प्रश्न-भूषण (५–२) में कहा है कि यदि लग्नेश लग्न को और अष्टमेश अष्टम

स्थान को देखे तो नाव को सकुशल कहना चाहिए। ताजिकनीलकंठी में कहा है कि यदि लग्नेश और अष्टमेश अपनी अपनी राशि में हों या अपने अपने भावों को देखते हों तो नाव से व्यवहार लाभ होवे और यदि बलवान् शुभग्रह अष्टमभाव में हो तो नाव लाभ और सुख देगी। प्रश्नभूषण (५–७. ८) के अनुसार गुरु अष्टम स्थान में हो और लग्नेश लग्न को देखे तो नाव के व्यापार से लाभ होता है। यदि अष्टम स्थान में शुभग्रह हो, लग्न, लग्नेश, चन्द्रमा और शुक्र बलवान् हों, तो पूर्णलाभ होता है। प्रश्नशिरोमणि के कर्त्ता श्रीरुद्रमणि के मतानुसार यदि तीसरे, छटे, नवमें, बारहवें भावों में निर्बल पापीग्रह हों और शुभग्रह बलवान् हों तो नौका कुशल से आती है। ताजिक नीलकंठी में ग्रन्थान्तर के आधार पर लिखा है कि यदि केन्द्रों में बलवा, शुभग्रह और अन्य स्थानों में निर्बल पापग्रह हों तो नाव कुशलपूर्वक लौटेगी और लाभ देगी। इसी प्रकार यदि लग्नेश वक्रगति हो और लग्नेश राशि का स्वामी या चतुर्थेश शुभग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो नाव मार्ग से कुशलपूर्वक वापिस आएगी और यदि पापग्रह से युक्त वा दृष्ट हो तो वस्तु बिना ही लौट आवे॥ १४१॥

अब दूसरे प्रश्न अर्थात् नौका के डूबने आदि के विषय में कहते हैं—

नेक्षते लग्नपो लग्नं मृतिपो नेक्षते मृतिम्।
यानपात्रस्य वक्तव्यं निश्चितं बुडनं तदा॥ १४२॥

अर्थ—यदि लग्नेश लग्न को न देखे और अष्टमेश अष्टमभाव को न देखे तो निश्चय से कहना चाहिए कि नाव डूब गई॥ १४२॥

व्याख्या—पिछले श्लोक की व्याख्या करते हुए हम ग्रन्थान्तर के आधार पर कह आए हैं कि यदि लग्नेश लग्न को और अष्टमेश अष्टमभाव को देखे तो नौका क्रयाणक सहित सकुशल लौटती है। उसके विपरीत होने से नौका का डूब जाना युक्तियुक्त सिद्ध ही है, अतः आचार्य ने इस श्लोक में हक दिया है।

आचार्य रुद्रमणि ने प्रश्नशिरोमणि में कहा है कि यदि चन्द्रमा, लग्नेश और अष्टमेश एक राशि पर स्थित हों तो नौका और नौकापति दोनों को मृत्यु अथवा बन्धन का भय होता है, और विशेष करके यदि उक्त भावों के स्वामी पापग्रह हों। प्रश्नभूषण (५–५) के अनुसार यदि लग्न, अष्टम या चतुर्थ भाव में पापग्रह हा और लग्नेश अस्त हो तो नाव का मालिक मर गया या रोगी हो गया, यह कहना चाहिए। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि लग्नेश सूर्य की किरणों द्वारा संतप्त होने से रोगोत्पत्ति करता है और पापग्रह की सहायता से मृत्यु तक कर देता है या मृत्युतुल्य कष्ट देता है। ग्रन्थान्तर के आधार पर ताजिक नीलकंठी में बताया है कि यदि लग्नेश और चन्द्रमा परस्पर शत्रु दृष्टि से देखें तो नाव वाले मनुष्यों का परस्पर कलह होवे ॥ १४२ ॥

अब नाव के वायु द्वारा अथवा अन्य कारणों से पथभ्रष्ट होने या घूमने आदि के तीसरे प्रश्न पर विचार करते हैं—

लग्नपश्चाष्टमस्थानाधिपतिर्वा भवेद्यदि ।
सप्तमे कथयंत्यंतर्जले वापनिकं तदा ॥ १४३ ॥

अर्थ—यदि लग्नेश या अष्टमेश सप्तम भाव में हों तो नौका जल के अन्दर भ्रमण कर रही है, ऐसा विचारवान् कहते हैं ॥ १४३ ॥

व्याख्या—प्रश्नभूषण (५–४) में भी कहा है कि **'लग्नपोवाऽष्टमेशश्च सप्तमे यदि वर्तते। महोत्पातं विजानीयादरिबह्निकृतं तदा ।'** अर्थात् 'यदि लग्नेश या अष्टमेश सातवें हो तो शत्रु या अग्नि से भारी उत्पात समझना चाहिए।' क्यों ? इसलिए कि अष्टमभाव नौका का लग्नस्थान है, उस से षष्टस्थान अर्थात् लग्नभाव नौका का शत्रु स्थान है।

लग्नेश अर्थात् नौका का शत्र सप्तम भाव में स्थित होकर लग्न (नौका के शत्र स्थान) का पूर्ण दृष्टि से देखने से शत्रु की वृद्धि करता है। अतः

शत्रु द्वारा नौका को हानि पहुँचाने का योग बनता है। यदि लग्नेश और अष्टमेश का संयोग सप्तम भाव (नौका के व्ययभाव) में हो तो भी शत्रु द्वारा हानि का योग बन पाता है। नौकापति (अष्टमेश) सप्तम भाव में जाने से भी नौका के लिए हानिकारक है। अतः अष्टमेश या लग्नेश से सप्तम भाव में रहने से नाव को क्षति पहुँचने की सम्भावना है। अतः नाव का जल म घूमना युक्तियुक्त है और इसीलिए अनर्थ कारक भी। यदि चन्द्रमा और लग्नेश परस्पर शत्रु दृष्टि से देखते हों तो दो नौका के स्वामियों में लड़ाई हो जाती है, ऐसा प्रश्नशिरोमणि में कहा है ॥ १४३ ॥

अब नौका द्वारा आए वस्तुव्यवहार से हानि पहुँचने के योग को कहते हैं—

नीचस्थोऽस्तमितो वा मृत्युपतिर्नवमगो रिपुक्षेत्रे ।
नीचो वा भवति यदा व्यवहृतलाभो भवेन्न तदा ॥ १४४ ॥

अर्थ—यदि अष्टमेश नीच राशि अथवा अस्त का नवम भाव में हो, अथवा शत्रुराशि या नीचराशि का कहीं भी हो तो नाव द्वारा आए वस्तु व्यवहार से लाभ नहीं होता ॥ १४४ ॥

व्याख्या—नौका स्थान अष्टमभाव होने से नवम भाव नौका का धन-भाव सिद्ध हुआ। अष्टमेश यदि सूर्य की रश्मियों से अस्त हो कर या नीच राशि का नवमभाव में हो तो धनभाव का अस्त अर्थात् नाश होना युक्तिसंगत ही है। वृहत्पाराशरहोराशास्त्र के अनुमार यदि बली लग्नेश धनभाव में ह तो जातक धनवान् होता है और यदि दुबल या पापयुक्त लग्नेश धनभाव में हो तो वंचना (धोखा, ठग्गी) से धन का नाश होता है – **धनस्थे यदि लग्नेशो निधिमान् बलसंयुते। दुर्बले पापसंयुक्ते वंचनादि फलं वदेत् ॥** इसी कथन के अनुसार ही नौकापति (अष्टमेश) अपने से धनभाव (नवम स्थान) में नीच या अस्त होने से अथवा शत्रुक्षेत्री होने से धन का नाश ही करता है। इस से यह भी सिद्ध हुआ कि यदि बलयुक्त अष्टमेश नवम भाव में हो, स्वोच्च, स्वक्षेत्री,

मित्रक्षेत्री या उदय हो तो नौका द्वारा लाए गए वस्तु व्यवहार से धन लाभ होगा। प्रश्नभूषण (५–३) में कहा है कि **'लग्नाष्टमपती नीचौ गुरुर्नवमगो यदि। रिपुक्षेत्रे तदा लाभो न नौकाव्यवहारतः,'** अर्थात् 'यदि लग्नेश और अष्टमेश नीच हों और नवमस्थान में स्थित गुरु शत्रुराशि में हो तो नौका द्वारा लाई वस्तु के व्यवहार से लाभ नहीं होता।' गुरु धन का कारक नीच या शत्रुक्षेत्री होने से धन का अनुमानित लाभ नहीं हो देता, और लग्नेश और अष्टमेश के नीच होने से शत्रु द्वारा धन नाश होने में सन्देह ही क्या है। इसी प्रकार अपनी बुद्धि द्वारा धनलाभ, धननाश आदि का चिन्तन किया जाना चाहिए ॥ १४४ ॥

इति नौमृतिबन्धनद्वारम् ॥ ३० ॥

अब व्यतीत दिन के लाभालाभ पर विचार किया जाता है—

लग्ने यदिह विचारो भवति नवांशकगतैर्ग्रहैस्तत्र ।
बीजं गुरूपदेशो लग्ननवांशोऽन्यथायुक्तम् ॥ १४५ ॥

अर्थ—लग्न द्वारा जो विचार इस (बीते हुए काल) सम्बन्ध में होता है वही नवांशों में स्थित ग्रहों द्वारा होता है। इस में गुरु का उपदेश ही बीज है, वर नवाँशफल अयुक्त है ॥ १४५ ॥

व्याख्या—श्लोक ५६ में आचार्य ने समस्त कार्यों में यहाँ चन्द्रमा को बीज सदृश, लग्न को पुष्पसदृश, द्वादश भावों को स्वादुसदृश बताया है वहाँ नवांश को फल सदृश कहा है। भाव यह है कि सभी प्रश्नों में चन्द्रमा, प्रश्न-लग्न, भाव तथा नवांश, इन चार बातों का ध्यान करके ही फलादेश कहने की व्यवस्था मानी गई है। पर व्यतीत दिनादि का फलादेश कहने में प्रश्नलग्न और नवांशलग्नादि का विचार ही प्रधान है। श्लोक ३९ की व्याख्या में हम कह आए हैं कि नवांश राशि के नवमें भाग को कहते हैं। प्रत्येक राशि में ३० अंश होने के कारण प्रत्येक नवांश ३ अंश और २० कला या २०० कला

का होता है। अर्थात् क्रान्तिवलय (Ecliptic) के ३ अंश और २० कला के अन्तराल को नवांश कहते हैं। यद्यपि नवांश कुण्डली बनाने और उससे फलादेश कहने के लिए आचार्य ने गुरूपदेश को ही बीज रूप माना है, तथापि पाठक जनों के हितार्थ हम नवांश कुण्डली पर सुगम रीति से प्रकाश डालते हैं। यदि प्रश्नलग्न चर राशि (मेष, कर्क, तुला, मकर) का हो तो अपनी राशि से नवांश को गिने। यदि स्थिर राशि (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ) का हो तो नौवीं राशि से गिन, और द्विःस्वभाव राशि का (मिथुन, कन्या, धनु, मीन) का हो तो पाँचवीं राशि से गिने। जो राशि आवे वह नवांश-लग्न होता है। इसा तरह ग्रहों को स्थापित करे। उदाहरणार्थ प्रश्नकालीन लग्न तुला राशि के ग्यारह अंश ३३ कला में होने से चौथे नवांश में है। तुला चर राशि होने से इसी राशि (तुला) से चौथे नवांश अर्थात् तुला से चौथे स्थान अथवा मकर राशि नवांश कुण्डली का लग्न होगा। मकर राशि को लग्न मान कर द्वादश भावों को स्थापित करने से नवाँश भाव बने। प्रश्न समय में मंगल सिंह राशि के १८ अंश २४ कला है। अतः छटा नवांश व्यतीत हो रहा है। सिंह राशि 'स्थिर' है, इसलिए सिंह से नवमीं राशि (मेष) से छटा नवांश अर्थात् मंगल नवांश कुण्डली में कन्या राशि में होगा। नवांश लग्न मकर होने से मंगल कन्याराशि अर्थात् नवम भाव में रहेगा। इसी प्रकार शेष ग्रहों को स्थापित करके नवांश कुण्डली बनाए। यद्यपि होरा-प्रदीप के अनुसार 'सन्ततिफलं नवांशात्' कह कर केवल नवांशों द्वारा सन्ततिफल कहने की व्यवस्था की गई है तथापि प्रश्नशास्त्र में सर्व प्रकार के प्रश्नों में साधारणतः और अतीतदिन प्रश्नों में विशेषतः इसका प्रयोग किया जाता है ॥१४५॥

तत्तन्नवांशकगतान्खेचरान्न्यस्य तद्दिने लग्ने।
प्रष्टुरवधार्य गणकैर्वाच्यमतिक्रांतदिनवृत्तम् ॥१४६॥

अर्थ—उस दिन के लग्न में सब ग्रहों को अपने अपने नवांश स्थानों में रख कर और व्यतीत दिन के वृत्तान्त पर विचार करने के बाद ज्योतिषी प्रश्न कर्त्ता को फलादेश कहे ।।१४६।।

व्याख्या—विविध ग्रहों को यथावत् अपनी २ नवाश राशियों में स्थापन करने की विधि का वर्णन ऊपर कह दिया गया है। यहाँ आचार्य का आशय यह है कि उस दिन की प्रश्नलग्न कुण्डली और नवांश कुण्डली पर भली भाँति विचार कर के उस दिन का फलादेश कहना चाहिए । नवांशगत ग्रहों की दिनादि संख्या ग्रन्थान्तर में इस प्रकार दी गई है—सूर्य, बुध और शुक्र एक नवांशखंड को तीन दिन और बीस घड़ी में भोगते हैं, चन्द्रमा केवल १५ घडी में, गुरु एक मास तेरह दिन और बीस घडी में, शनि तीन मास दश दिन में, राहु और केतु दो दो मास में एक नवांश खंड को भोगते हैं । इसका कारण यह है कि तीन ग्रह—सूर्य, बुध और शुक्र—एक राशि पर तीस दिन रहते हैं तो एक नवांश पर तीन दिन और बीस घड़ी ($30 \div 9 = 3\frac{1}{3}$ दिन) रहेंगे । मंगल एक राशि पर डेढ़ महीना या पैंतालीस दिन रहता है तो एक नवांश पर पाँच दिन ($45 \div 9 = 5$) रहेगा। गुरु एक राशि पर तेरह मास रहता है तो एक नवांश में एक मास 13 दिन और 20 घड़ी ($13 \times 30 \div 9 = 43$ दिन 20 घड़ी) रहेगा। राहु केतु एक राशि पर डेढ़ वर्ष या अठारह मास तक रहते हैं अतः एक नवांश में दो मास ($18 \div 9 = 2$) रहेंगे। शनि मन्दगति के कारण एक राशि में अढ़ाई वर्ष या तीस मास तक रहता है तो एक नवांश में तीस मास दस दिन (30 मास $\div 9 = 3\frac{1}{3}$ मास) तक रहता है। चन्द्रमा द्रुतगति होने के कारण एक राशि में केवल सवा दो दिन रहता है तो एक नवांश में १५ घड़ी ($\frac{9}{4} \div 9 = \frac{1}{4}$ दिन) ही रहता है । इसा के आधार पर फलादेश का विचार करना चाहिए।

नवांशखंडभुक्तिबोधक चक्र।

ग्रह	सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	रा०	के०
मास	०	०	०	०	१	०	३	२	२
दिन	३	०	५	३	१३	३	१०	०	०
घड़ी	२०	१५	०	२०	२०	२०	०	०	०

इत्यतीतदिनलाभादिद्वारम् ॥३१॥

अब आचार्य नवांशों के आधार पर कार्यसिद्धि की कालावधि का निर्णय करते हैं—

लग्नपतिर्यत्रांशे पृच्छालग्ने तमंशमालोक्य।
लग्नाधिपांशलग्नांशनाथयोर्दृग्युतिसुहृत्त्वम् ॥१४७॥
यत्र स्यात्तत्र भवेत्सुंदरता तनुधनादिभावेषु।
यावल्लग्नाधिपतेरंशकाल: स कालश्च ॥१४८॥
संचार्योऽसौ तावद्यावत् पूर्णा भवन्ति ते भावा:।
मासफलं संपूर्णं जातं लग्नाधिपात्तदिदम् ॥१४९॥

अर्थ—प्रश्नलग्न में लग्नेश जिस नवांशक में हो उस नवांश को देख कर लग्नेश के नवांशाधिपति और लग्न के नवांशपति यहाँ हों उन में यदि पारस्परिक दृष्टि योग या मित्रता हो ता लग्नधनादि भावों की वृद्धि होती है। और कालावधि लग्नेश के नवांश काल तक जानना। १४७—१४८॥

वह काल तब तक चलना चाहिए जब तक वे भाव पूर्ण हों और वह कार्य (दृष्टि योग मित्रता करके) उतने महीनों में पूर्ण होता है जितनी संख्या पर भाव से लग्नेश हो ॥१४९॥

व्याख्या—यहाँ पर आचार्य ने दो मत प्रकट किए हैं (१) प्रश्नकालीन लग्न में जो नवांश हो उसके स्वामी और लग्नेश के नवांश के स्वामी में यदि मित्रता या पारस्परिक युतिदृष्टि सम्बन्ध हो तो कार्यसिद्धि उतने काल में होगी जितना अन्तर लग्ननवांशपति और लग्नेश नवांशपति के नवांशों में हो। उदाहरणार्थं, प्रश्नलग्न मिथुन ४ अंश १२ कला स्पष्ट होने से दूसरे नवांश में है और मिथुन द्विःस्वभाव राशि होने के कारण पंचम राशि अर्थात् तुला राशि से दो नवांश गिन कर वृश्चिक नवांश में हुआ। अतः लग्ननवांश वृश्चिक हुआ। लग्नांशस्वामी मंगल है और वह अष्टमस्थ उच्चावस्था में ११ अंश १३ कला स्पष्ट है। मकर चरराशि है अतः इसी राशि से चतुर्थ नवांश (क्योंकि मंगल चौथे नवांश में है) अर्थात् मेष नवांश में हुआ। यह लग्नेशांश हुआ। लग्ननवांश वृश्चिक से लग्नेशनवांश मेष तक गिनने से ६ संख्या आती है। अतः कार्य की सिद्धि ६ दिनों में होगी। (२) मिथुन लग्न का स्वामी अर्थात् बुध जिस भाव से मित्रता, युति, दृष्टि सम्बन्ध रखता हो उस भाव से जितनी संख्या पर हो उतने मासों म कार्यसिद्धि होगी। पर यह मत सर्वमान्य नहीं है, अतः हम पहले मत सम्बन्धी सविस्तार विचार करते हैं ताकि इस जटिल विषय को पाठक जन भली भांति समझ सकें।

ग्रहों की कालावधि जानने के लिए वृहज्जातक (२—१४) में आचार्य वराहमिहिर ने कहा है कि **'अयनक्षणवासरर्तवो मासार्द्धं च समाश्च भास्करात्'** अर्थात् अयन (छः मास), क्षण (२ घटी), दिन, ऋतु (दो मास), मास, मासार्द्ध (१५ दिन), वर्ष—यह सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि की कालावधि है। कल्याणवर्मा ने भी सारावली (४. १७) में यही कहा है, यथा—**अयनक्षणदिवसर्तुकमासतदर्धशरदां दिनेशाद्याः**। सर्वार्थचिन्तामणि (१. ५३) में इसके अतिरिक्त राहु के आठ मास और केतु के तीन मास कहे गए हैं :—

ऋतुत्रयंवासरनायकस्य क्षणं शशांकस्य दिनं कुजस्य । विदो ऋतु देवगुरोस्तु मासः पक्षो भृगोः वत्सरमर्कसूनोः । अष्टौ तु मासाः तुहिनांशुशत्रोः केतोस्तु मासत्रयमेव कालः ।। शीघ्र प्रसंग के लिए हम इसे चक्र द्वारा स्पष्ट करते हैं ।

ग्रह-काल-बोध-चक्र

ग्रह	सू०	चं०	मं०	बु०	ु०	शु०	श०	रा०	के०
काल	अयन १	क्षण १	दिन १	ऋतु १	मास १	पक्ष १	वर्ष १	मास ८	मास ३
गुणक	१८०	२	६०	६०	३०	१५	३६०	२४०	९०
काल संज्ञा	दिन	घटी	घटी	दिन	दिन	दिन	दिन	दिन	दिन

मणित्थ और कल्याणवर्मा ने अयनादि स्वामी का प्रयोजन यह बताया है—

लग्नांशकपतितुल्यः कालो लग्नोदितांशसमतुल्यः ।
वक्तव्यो रिपुविजये गर्भाधानेऽथ कार्यसंयोगे ।।

अर्थात् गर्भाधान, रिपुविजय, कार्यसिद्धि आदि प्रश्नों में जितने नवांश लग्न में उदय हों और जितने नवांश लग्नेश के हों उतनी संख्या पर काल (समय) का निर्णय किया जाता है । उदाहरणार्थ यदि नवांश स्वामी सूर्य हो तो कार्य सिद्धि लग्न नवांश से लग्नेशनवांश की जितनी संख्या है उतने अयनों (६ मासों) में होगी । चन्द्र हो तो उतने मुहूर्तों (२ घटी या ४८ मिण्टों) में, मंगल हो तों उतने दिनों में, बुध हो तो उतनी ऋतुओं (दो मास) में, गुरु हो तो उतने मासों में, शुक्र हो तो उतने पक्षों (१५ दिनों में, शनि हो तो उतने वर्षों में ।

उदाहरण १—यदि मेष लग्न का प्रश्नलग्न में मंगल हो, लग्न २ अंश और मंगल ८ अंश स्पष्ट हो तो कितने समय में कार्यसिद्धि होगी ? इस प्रश्न में लग्न चर राशि में दो अंश स्पष्ट होने से लग्न में मेष राशि का ही नवांश हुआ। मंगल ८ अंश होने से मिथुन का नवांश हुआ। मेष से मिथुन तक तीन की संख्या होने से और मंगल के 'दिन' ग्रहण से (**दिनं कुजस्य**) तीन दिनों में कार्य सिद्ध होगा। पर यह गणना स्थूल रूप में ही है। सूक्ष्मरूप में इस प्रकार कालावधि का निर्णय करेंगे।

प्रश्नलग्न राश्यादि ०/२/० में मेष नवांश वर्तमान है, इसका स्वामी मंगल ०/८/० जो कि तीसरे नवांश में है। मंगल के ८/०/० अंशादि को तृतीय नवांश के १०/०/० अंशादि से हीन करने से २/०/० अंश शेष रहे। इनकी कला १२० को मंगल के गुणाक ६० से गुणा तो ७२०० हुए। इनको एक नवांशक की कला २०० से भाग दिया तो लब्ध ३६/० घट्यादि हुए। यहाँ २ नवांशगत हैं अत: इनको मंगल के गुणाक ६० से गुणा तो १२० हुए। इन में लब्ध घट्यादि ३६/० को युक्त किया तो १५६/० घट्यादि हुए। इनको ६० से भाग देने पर लब्ध २ दिन ३६ घटी शून्य पल हुए। इनमें अभीष्ट कार्य की सिद्धि होगी।

उदाहरण २—प्रश्नलग्न राश्यादि ४/८/२५/० में मिथुन नवांश वर्तमान है। इसके स्वामी बुध का ऋत्वात्मक काल है—**विदो ऋतुः**। यहाँ प्रश्नलग्न में २ नवांश गत हुए। प्रश्नलग्न के अंशादि को तृतीय नवांश के अंशादि १०/०/० से हीन किया तो शेष अंशादि १/३५/० बचे। इनकी कला ९५/० को बुध के दिनात्मक गुणाक ६० से गुणा तो ५७०० हुए। इनको एक नवांश की कला २०० से भाग देने पर लब्ध २८/३०/० दिनादि हुए। यहाँ प्रश्नलग्न में २ नवांश भुक्त हुए हैं। इसलिए भुक्त नवांश २ को बुध के दिनात्मक गुणाक ६० से गुणा तो १२० दिन हुए। इन में पूर्वा-

गत दिनादि २८/३०/० को युक्त किया तो १४८/३०/० दिनादि हुए। इन्हें ऋतुमान ६० से भाग दिया तो लब्ध २ ऋतु २८ दिन ३० घटी में अभीष्ट कार्य की सिद्धि होगी ।।१४७—१४८—१४९।।

इति लग्नेशांशलाभद्वारम् ।।३२।।

अब द्रेष्काणों द्वारा ही द्वादश भावों के फल को लिखते हैं—

द्रेष्काणे यत्र लग्नं स्याद्द्वाविंशतितमे ततः।
द्रेष्काणे यदि लग्नेशः पृच्छायां तन्मृतिर्ध्रुवम् ।।१५०।।

अर्थ—प्रश्न समय जिस द्रेष्काण में लग्न हो उससे बाईसवें द्रेष्काण में यदि लग्नेश हो तो (रोगी की) निश्चय मृत्यु हो ।।१५०।।

व्याख्या—द्रेष्काण दश अंश का होता है। एक राशि में ३० अंश होने के कारण प्रत्येक राशि में तीन द्रेष्काण होते हैं। प्रथम द्रेष्काण शून्यांश से १० अंश तक, दूसरा १० अंश से उपरान्त २० अंश तक और तीसरा २० अंश से उपरान्त ३० तक होता है। लग्न में यदि पहला द्रेष्काण हो तो बाईसवाँ द्रेष्काण अष्टम भाव का पहला द्रेष्काण होगा, यदि दूसरा द्रेष्काण हो तो बाईसवां द्रेष्काण अष्टम स्थान का दूसरा द्रेष्काण होगा, और लग्न में तीसरा द्रेष्काण हो तो उक्त बाईसवाँ द्रेष्काण अष्टम-स्थान का ही तीसरा द्रेष्काण होगा। भाव यह कि लग्न में चाहे कोई भी द्रेष्काण क्यों न हो यदि लग्नेश बाईसवें द्रेष्काण में हो तो अवश्यमेव लग्नेश अष्टम भाव अथवा मृत्यु स्थान ही में रहेगा। लग्नेश (रोगी का मालक) मृत्युभावस्थ होने से रोगी की मृत्यु का ही सूचक है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। इसीलिए आचार्य ने रोग सम्बन्धी प्रश्न में लग्नेश के बाईसवें द्रेष्काण में होने से मृत्यु फल कहा है, जो उचित ही है ।।१५०।।

लग्नपो मृत्युपश्चापि लग्ने स्यातामुभौ यदि ।
स्थितौ द्रेष्काण एकस्मिंस्तदा मूर्तिर्निरामया ।।१५१।।

अर्थ— यदि लग्नेश और अष्टमेश दोनों ही लग्न में एक ही द्रेष्काण में स्थित हों तो शरीर नीरोग रहेगा ।।१५१।।

व्याख्या—लग्न से स्वास्थ्य, आयु, शरीर का सुख दुःखादि देखा जाता है। जो भावपति अपने स्वामी से युक्त हो उसकी वृद्धि ही होती है, इस विषय में दैवज्ञों में मतैक्य है। अतः लग्नेश की लग्न में स्थिति शरीर के लिए सुखकारक, स्वास्थ्यवर्धक एवं गुणकारी है। अष्टम स्थान मृत्यु अथवा रोग का स्थान है। मृत्युपति (अष्टमेश) का लग्न में होना अथवा अपने स्थान (अष्टम स्थान) से छटे (रिपुभाव) में जाना मृत्यु का नाशकारी है, क्योंकि जिस भाव का स्वामी त्रिक स्थान में हो उसका नाश ही कहा है, यथा— **यद्भावनाथो रिपुरन्ध्ररिष्फे तद्भावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञः।** इसलिए एक लग्न में लग्नेश और अष्टमेश की स्थिति रोगनाशक और मृत्यु नाशक सिद्ध होने से क्षेमकारक ही हुई। विशेषतः एक ही द्रेष्काण में दोनों परस्पर शरीर के रोग की निवृत्ति और शरीर सुख की वृद्धि करते हैं। इसीलिए ग्रन्थकर्ता ने लग्न के एक ही द्रेष्काण में लग्नेश और अष्टमेश के योग को कल्याणकारी माना है ।।१५१।।

लग्नपो मृत्युपश्चापि मृत्यौ स्यातामुभौ यदि ।
स्थितौ द्रेष्काण एकस्मिस्तदा मृत्युर्न संशयः ।।१५२।।

अर्थ—यदि लग्नेश और अष्टमेश अष्टम भाव में हों और एक ही द्रेष्काण में स्थित हों तो मृत्यु ही हो, इसमें सन्देह नहीं ।।१५२।।

व्याख्या—रोगी सम्बन्धी प्रश्न में अकेला लग्नेश ही बाईसवें द्रेष्काण (अष्टम भाव) में मृत्यु देता है, यह श्लोक १५० में बताया गया है । यदि मृत्युपति (अष्टमेश) भी मृत्यु भाव (अष्टमस्थ) में हो तो मृत्यु अथवा रोग की वृद्धि करने से मृत्युदायक ही है। इसलिए लग्नेश और अष्टमेश दोनों अष्टम भाव में मृत्यु ही देते हैं ।।१५२।।

लग्नपो लाभपश्चापि लाभे स्यातामुभौ यदि ।
स्थितौ द्रेष्काण एकस्मिन्प्रष्टुर्लाभस्तदा ध्रुवम् ॥१५३॥

अर्थ—यदि लग्नेश और लाभेश (एकादशेश) दोनों लाभ भाव (एकादश स्थान) में एक ही द्रेष्काण में हों तो प्रश्नकर्त्ता को अवश्य लाभ हो ॥१५३॥

व्याख्या—ग्रन्थकर्त्ता ने श्लोक ७३ में कहा था कि यदि लग्नेश और कार्येश दोनों कार्य भाव में हों तो कार्यसिद्धि होती है। उसी के अनुसार यहाँ कार्यभाव लाभस्थान है, अतः लग्नेश और लाभेश (कार्येश) की लाभ-भाव (कार्यभाव) में स्थिति लाभप्रद ही है। श्लोक ८० में भी ग्रन्थकर्त्ता ने स्पष्ट किया है कि लग्नेश लेने वाला और लाभेश देने वाला होता है, इन दोनों का योग लाभ कारक होता है। इस नियम के अनुसार भी यहाँ लग्नेश और लाभेश का लाभभवन में योग लाभकारक ही सिद्ध हुआ। यदि दोनों एक ही द्रेष्काण में हों तो विशेष बलदायक होने से एक दूसरे के सहायक बनते हैं। अतः आचार्य ने ठीक ही कहा है कि इस योग में लाभ अवश्यमेव होगा ॥१५३॥

लग्नपः पुत्रपश्चापि पुत्रे स्यातामुभौ यदि ।
स्थितौ द्रेष्काण एकस्मिन्पुत्रप्राप्तिस्तदा भवेत् ॥१५४॥

अर्थ—यदि लग्नेश और पंचमेश दोनों एक साथ पंचम भाव में एक ही द्रेष्काण में स्थित हों तो पुत्र की प्राप्ति हो ॥१५४॥

व्याख्या—ऊपर के श्लोक में दी गई युक्ति के अनुसार लग्नेश और कार्येश (पंचमेश) के कार्यभाव (पंचमभाव = पुत्रभाव) में योग होने और विशेषतः एक ही द्रेष्काण में पारस्परिक सहायक होने से पुत्रप्राप्ति का प्रबल योग बनता है ॥१५४॥

एवं द्वादशभावेषु द्रेष्काणैरेव केवलैः ।
बुधो विनिश्चितं ब्रूयाद्भावेष्वन्येषु निस्पृहः ॥१५५॥

अर्थ—इसी रीति से विद्वान् को द्वादशभावों में केवल द्रेष्काणों द्वारा निश्चय से फलादेश कहना चाहिए और अन्य प्रश्नों पर भी विचार करना चाहिए ॥१५५॥

व्याख्या—भाव यह है कि लग्नेश का यदि दशमेश से एक ही द्रेष्काण में दशम भाव में योग हो तो राज्यलाभ, यदि धनेश के साथ धन-भाव में एक ही द्रेष्काण में मेल हो तो धनलाभ कहना चाहिए। इसी प्रकार बारह भावों सम्बन्धी तथा अन्य प्रश्नों सम्बन्धी भी द्रेष्काणों द्वारा चिन्तन करना चाहिए ॥१५५॥

प्रश्नकाले सौम्यवर्गो यदि लग्नेऽधिको भवेत् ।
ग्रहभावानपेक्षेण तदाऽऽख्येयं शुभं फलम् ॥१५६॥

अर्थ—प्रश्नकालीन लग्न में यदि शुभ ग्रहों के वर्ग अधिक हों तो ग्रह और भावादि विचार बिना ही शुभ फल कहना चाहिए ॥१५६॥

व्याख्या—यद्यपि पराशरादि ऋषियों ने सोलह वर्गों को माना है तथापि गृह, होरा, द्रेष्काण, सप्तांश, नवांश, दशमांश, द्वादशांश, षोडशांश, त्रिशांश और षष्टयंश आदि दश वर्गों का उपयोग प्रायः देखने में आता है। इनमें से लग्न, होरा, त्रिशांश, सप्तांश, नवांश, द्वादशांश और त्रिशांश को 'सप्तवर्गी' कहा गया है, यथा—**लग्नं होरा त्रिभागश्च सप्तांशो नवमांशकः। द्वादशांशस्तुस्त्रिंशल्लवः सप्तवर्गिका**—सूर्यजातक। प्रश्नशास्त्र में प्रायः षड्वर्ग का उल्लेख ही उपलब्ध होता है, क्योंकि षड्वर्ग में स्थित ग्रह शुभ माना गया है, यथा—**विलग्नहोराद्रेष्काणनवांशद्वादशांशकाः। त्रिशांशकश्च षड्वर्गः शुभकर्मसु शस्यते** (जातकपारिजात १.४७)॥ यहाँ ग्रन्थकर्त्ता का आशय यह है कि प्रश्न लग्न में यदि चन्द्रमा, बुध, गुरु, शुक्र का क्षेत्र (राशि), होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश या त्रिशांश की अधिकता हो तो भाव तथा ग्रहादियों की पर्वाह न करते हुए केवल सौम्यवर्ग के आधार पर शुभ फल, कार्यसिद्धि कहनी चाहिए। षटपञ्चाशिका (१—४) में भी इसी मत की

पुष्टि की गई है, यथा—**सौम्ये विलग्ने यदि वास्यवर्गे शीर्षोदये सिद्धिमुपैति कार्यम्** । ग्रन्थान्तरों में भी इसी मत का अवलंबन किया गया है ।।१५६।।

प्रश्नकाले क्रूरवर्गो लग्ने यद्यधिको भवेत् ।

अशुभं फलमाख्येयं ग्रहापेक्षां विना तदा ।।१५७।।

अर्थ—यदि प्रश्नकालीन लग्न में पाप ग्रहों के वर्ग अधिक हों तो ग्रहादि विचार बिना ही अशुभ फल कहना चाहिए ।।१५७।।

व्याख्या—श्लोक ४२ में सूर्य, मंगल, शनि, राहु की क्रूर संज्ञा मानी गई है । पिछले श्लोक की व्याख्या में वर्गों पर विचार किया जा चुका है । आचार्य का आशय यह है कि यदि प्रश्नकालिक लग्न में पापग्रहों के वर्गों की अधिकता हो तो ग्रहादि विचार बिना ही यह कहना चाहिए कि कार्य की सिद्धि नहीं होगी अथवा अशुभ फल होगा । ग्रन्थान्तरों में भी यही मत सर्वमान्य है ।। १५७ ।।

इति द्रेष्काणादिद्वारम् ।। ३३ ।।

अब आचार्य दो श्लोकों द्वारा देवदोषज्ञान सम्बन्धी विचार करते हैं—

मूर्तौ छिद्रे द्वादशेऽर्को व्यये कर्मणि भूसुतः ।

षष्ठांत्याद्याष्टमश्चन्द्रो व्ययास्ते शेषखेचराः ।। १५८ ।।

क्षेत्राधिपाकाशदेवीशाकिन्याद्याश्च देवताः ।

देवदोषांबुदेवात्मव्यंतरामिहरादयः ।। १५९ ।।

अर्थ—यदि लग्न, अष्टम, द्वादश भाव में सूर्य, बारहवें और दसवें मंगल, छटे, बारहवें, पहले (लग्न), आठवें चन्द्रमा, और शेषग्रह (बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु) बारहवें, सातवें हों तो क्रम से क्षेत्रपाल, आकाश देवी, शाकिनी आदि देवता, देवदोष, जलदेवता, आत्मा (अपना अर्थात् निजदोष) और प्रेतादि का दोष होता है ।। १५८–१५९ ।।

व्याख्या—रोगोत्पत्ति, मृत्यु, सन्तान में बाधादि प्रश्नों में किसका दोष है, यह जानने के लिए यहाँ संकेत किया गया है । आचार्य ने माना है कि

ग्रह ही आधिभौतिक (शारीरिक), अध्यात्मिक (मानसिक दुःख) और आधि-दैविक दुःखों के कारण हैं। 'ग्रह' का अर्थ है 'पकड़ने वाला'। क्योंकि ग्रह की किरण-पातनें (Radiations) हमारे शरीर में प्रवेश करके भिन्न भिन्न दोषों को उत्पन्न करती हैं इसलिए ग्रहों को दोषकारक माना गया है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ-रत्न भावप्रकाश (खण्ड २, श्लोक ३२) में लिखा है कि **दर्पणादीन्यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा। स्वर्माणि भास्करार्चिश्च तथा देहे च देहधृक्। विशन्ति च न दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणाम्।** अर्थात् 'जैसे दर्पण (जल वा तेल) में छाया, प्राणी में शीत और उष्णता, सूर्यकान्त (आतशी शीशे) में सूर्य की ज्योति प्रवेश करती है पर दिखाई नहीं पड़ती उसी प्रकार शरीरधारियों में ग्रहों का प्रवेश होता है।' यहाँ आचार्य का आशय यह है कि यदि प्रश्नकालिक लग्न में सूर्य लग्न, अष्टम या द्वादशभाव में हो तो क्षेत्रपाल (राजा, जमींदार, किसान) का दोष होता है। सूर्य ग्रहों में राजा है इसलिए इन भावों में दोषकारक सूर्य राजदंडादि प्रदान करने से रोग या कैद में मृत्यु या मानसिक कष्ट देता है। बारहवें, दशवें दोषकारक मंगल हो तो आकाशदेवी अर्थात् शब्दसंघट्ट, कोलाहल, अन्तराल की कमी, कर्णदोषादि होते हैं। लग्न या त्रिकस्थानों में दोषकारक चन्द्रमा हो तो शाकिनी दोष (एक रोग का नाम), बुध सातवें, बारहवें हो तो वनदेवता (सिंह आदि हिंसक जन्तु), ग्रह ७, १२ में हो तो देवता, शुक्र ७, १२ में हो तो जलदेवता अर्थात् बाढ़, डूब कर मरना, जलोदर आदि रोगों की उत्पत्ति हो। यदि शनि ७ वें, १२ वें हो तो आत्मदोष अर्थात् निजी दोष कुपथ्य, कुसंगति, आत्मघात आदि और राहु ७ वें, १२ वें हो तो प्रेतदोष अर्थात् उन्मादादि मानसिक दोष हों। आयुर्वेद में यहां आधिभौतिक दुःखों की चिकित्सा औषधियों के सेवन द्वारा, अध्यात्मिक दुःखों की इच्छित वस्तु के मिलने, वस्त्रालंकार धारण करने, ज्ञान, विज्ञान द्वारा वर्णन की गई है वहाँ देवदोषों को दूर करने के

लिए मन्त्र मणि धारण, मङ्गलकर्म, बली उपहार (भूत यज्ञ), होम (अग्नि होत्र), नियम, प्रायश्चित्त, उपवास, बड़ों की सेवा, तीर्थयात्रा आदि की व्यवस्था की गई है। यद्यपि **'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'** के अनुसार मनुष्य को पूर्वकर्म अथवा आधिदैविक कर्म भोगना पड़ता है तथापि यदि ऐहिक कर्म प्रबल हों तो वे दब जाते हैं। कहा भी है—

दैवमात्मकृतं विद्यात्कर्म यत्पौर्वदैहिकम्।
स्मृतः पुरुषकारस्तु क्रियते यदिहापरम्॥
दैवं पुरुषकारेण दुर्बलं ह्युपहन्यते।
दैवेन चेतरत्कर्म विशिष्ठेनोपहन्यते॥

विषय-विस्तार की आशंका से हम यहां अधिक विचार नहीं कर सकते। केवल इतना कहना पर्य्याप्त होगा कि देवदोष कारक ग्रहों के सविस्तर उपाय ग्रन्थों में वर्णित हैं जो पण्डितों से पूछे जा सकते हैं॥ १५८–१५९॥

इति देवदोषद्वारम्॥३४॥

अब दिनचर्या पर विचार करते हैं—

यदीन्दुर्दिनचर्यायां शुभः स्यादुदयास्तयोः।
श्रेयांस्तदाऽवगंतव्यं सकलोऽपि हि वासरः॥१६०॥

अर्थ—दिनचर्या प्रश्न में यदि चन्द्रमा उदयकाल और अस्तकाल म शुभ हो तो जानना चाहिए कि सम्पूर्ण दिन ही शुभ रहेगा॥१६०॥

व्याख्या—यदि प्रश्नकर्त्ता यह प्रश्न करे कि आज का दिन कैसा रहेगा? तो यदि सूर्योदय काल से सूर्यास्त कालपर्यंत प्रश्न कुण्डली में चन्द्रमा शुभ हो तो सारा दिन ही शुभ रहेगा। यहाँ चन्द्रमा को प्रधानता इस लिए दी गई है कि चन्द्रमा कालपुरुष का मन है। ऋग्वेद (१०—९०.१३) में चन्द्रमा की उत्पत्ति विराट् पुरुष के मन से की गई बताई गई है—**चन्द्रमा मनसो जातः**। एतरेय आरण्यक (२. ४. १), बृहदारण्यकोपनिषद् (१. ३. १६

तथा ३. २. १३) आदि ग्रन्थ भी इस बात की पुष्टि करते हैं। सृष्टिमात्र के मनों पर प्रभाव डालने के कारण ही मनोविज्ञान शास्त्र ने कार्यसिद्धि के लिए मन की स्थिरता और संलग्न को अनिवार्य बताया है। श्लोक ५६ में चन्द्रमा को बीज रूप माना गया है—**इन्दुः सर्वत्र बीजाभो**। इसके अतिरिक्त ग्रह समूह में से चन्द्रमा ही द्रुततम गति वाला है, अर्थात् केवल सवा दो दिन में एक राशि और २७ दिनों में समस्त द्वादश राशि चक्र की परिक्रमा करता है। सो चन्द्रमा को ही छोटी-से-छोटी इकाई माना जा सकता है। सम्भवतः इन तथ्यों के कारण ही आचार्य ने दिनचर्या प्रश्न में केवल चन्द्रमा के शुभाशुभत्व को ग्रहण किया है। भाव यह है कि प्रश्नकालीन लग्न में यदि चन्द्रमा शुभ स्थान में शुभ ग्रहों से युत् वा दृष्ट हो तो दिन शुभ और अशुभ स्थान में यदि पाप ग्रहों से युत् वा दृष्ट हो तो अशुभ और मिश्र होने से मिश्रित फल प्रदान करेगा। पर शर्त यह है कि चन्द्रमा समस्त दिन भर शुभ रहे, ऐसा न हो कि दिन के किसी भाग में चन्द्रमा अन्य राशि में प्रवेश करने से अशुभ हो जाए। इसी कारण 'उदयास्त' के अर्थ लग्न (उदय) और सप्तम (अस्त) न करके उदयकाल और अस्तकाल ही किया है ॥१६०॥

राहौ वाथ कुजे क्रूरे परस्मिन्नपि खेचरे ।
अष्टमे स्वगृहे चैव दिने चन्द्रेऽसिना वधः ॥१६१॥

अर्थ—राहु वा मंगल अथवा अन्य क्रूर ग्रह यदि अष्टम भाव में स्वक्षेत्री हो और चन्द्रमा भी अष्टमस्थ हो, तो उसी दिन तलवार से मरण होगा ॥१६१॥

व्याख्या—ग्रन्थ कर्ता का आशय यह है कि प्रश्नकालीन कुण्डली में यदि राहु कन्या राशि (**कन्या राहुगृहं प्रोक्तम्**, श्लोक १९) अर्थात् स्वक्षेत्र में अष्टमस्थ हो, या मंगल मेष या वृश्चिक राशि का अष्टम भाव में हो, और चन्द्रमा भी अष्टमस्थ ही हो तो उसी दिन प्रश्नकर्त्ता का तलवार से

हनन होगा । क्यों ? श्लोक ११८ की व्याख्या में हम कह आए हैं कि राहु और मंगल दोनों शस्त्रधारी हैं । अष्टम भाव में यदि राहु अष्टमेश हो तो मृत्युपति मृत्युभाव में होने से मृत्युदायक सिद्ध हुआ। चन्द्रमा भी कन्या-राशि अर्थात् शत्रुक्षेत्री **(हिमांशुबुधयोर्वैरम्** श्लोक १६) और षष्टेश होने तथा राहु द्वारा मर्दित अष्टमस्थ होने से मृत्यु का ही सूचक हुआ । राहु शस्त्रधारी होने से शस्त्र के प्रहार से मृत्यु करेगा । मंगल वृश्चिक राशि में अष्टमस्थ होने से तथा नीचराशिगत चन्द्रमा के संग से भी शस्त्र द्वारा मृत्यु देगा । इसी प्रकार मेष राशिगत मंगल भी मृत्युपति मृत्युभाव में चन्द्रमा के साथ होने से शीघ्र ही मृत्युदायक सिद्ध होगा । इसे समझने के लिए कुंडलियाँ देखो ।
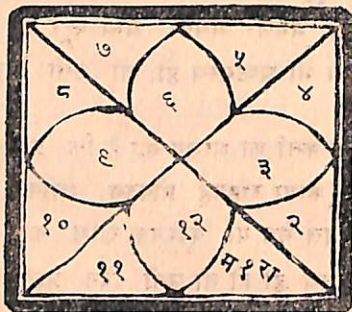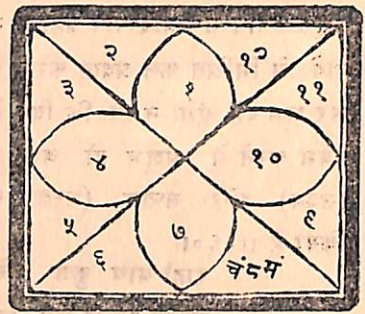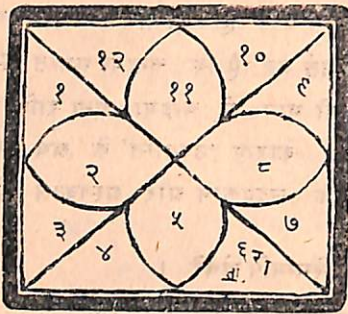
इसी प्रकार अन्य क्रूर ग्रहों—सूर्य और शनि—के सम्बन्ध में जानो। अर्थात् सिंह राशिस्थ सूर्य और चन्द्रमा मृत्यु भाव में, तथा मकर और कुम्भ-राशिस्थ शनि और चन्द्रमा भी अष्टम भाव में शस्त्र द्वारा ही मृत्यु देते हैं ॥१६१॥

दंतुरवदनः कृष्णो विज्ञेयो राहुदर्शने प्राणी।
षष्ठेऽष्टमे च जीवः कथयति च सन्निपातरुजम् ॥१६२॥

अर्थ—यदि राहु की दृष्टि हो तो मनुष्य काले रंग का और बड़े बड़े दाँतों वाला है, और छटे या आठवें भाव में बृहस्पति हो तो मनुष्य सन्निपात रोग से युक्त है ॥१६२॥

व्याख्या—श्लोक ३३ में ग्रन्थकर्त्ता ने राहु का कृष्ण वर्ण बताया है। अन्य ग्रन्थों में राहु को दीर्घ आकार और स्थूल दाँतों वाला कहा गया है। प्रश्नकालीन अथवा जन्मकालीन लग्न में यदि राहु लग्न को देखे तो प्रश्नकर्त्ता अथवा जातक का स्वरूप भी राहुतुल्य ही होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। छटे और अष्टम स्थान में गुरु भी उदर व्याधि, सन्निपातादि रोगों की उत्पत्ति करता है ॥१६२॥

इति दिनचर्याद्वारम् ॥३५॥

गर्भ में पुत्र है या कन्या, यह जानने के लिए आगे लिखते हैं—

पृच्छंत्याः पितृमन्दिरे पितृगृहाभिज्ञाक्षरं गुर्विणी।
पत्युश्चापि तदीयमदिरगतं गुर्व्या अभिज्ञाक्षरम्।
शुक्लारब्धदिनव्यवस्थिततिथीन्दत्त्वा मुनींश्च ध्रुवान्
भाग वह्निभिरेककेन तनयो द्वाभ्यां सुता खेन खम् ॥१६३॥

अर्थ—प्रश्न करने वाली गर्भवती स्त्री यदि पिता के गृह में हो तो पिता द्वारा धारित नाम के अक्षरों और सुसराल में हो तो सुसराल के नाम के अक्षरों तथा पति के नाम के अक्षरों को मिला कर जो संख्या हो उसमें शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से लेकर उस दिन की तिथि संख्या जो हो वह जोड़

दे। सात का ध्रुवांक जोड़ने से जो योग हो उसे तीन का भाग दे। यदि एक शेष रहे तो पुत्र, दो शेष रहे तो कन्या होगी। यदि शून्य शेष रहे तो शून्य अर्थात् गर्भिणी का गर्भ गिरे या कोई विघ्न पड़ने से गर्भनाश हो ।।१६३।।

व्याख्या—दैवज्ञ रामकृष्ण ने प्रश्नचण्डेश्वर (७—११. १२) में इस प्रकार लिखा है—**तिथि वारं च नक्षत्रं गर्भिणीनामसंयुतम् । सप्तभिश्च हरेद्भागं शेषं च फलमादिशेत् ।। रविगुरुमंगलसौरे पुत्रः शुक्रज्ञसोमेषु वदेच्च कन्याम् । विज्ञाय चांकं प्रवदेत्सुनिश्चितं स नोपहास्यं व्रजतीह लोके ।** अर्थात् 'तिथि, वार, नक्षत्र और गर्भिणी के नाम के अक्षर इकट्ठे कर सात से भाग देवे। यदि विषम अंक (१,३, ५) शेष रहे तो पुत्र, सम अंक (२, ४, ६) शेष रहे तो कन्या कहे। अथवा सूर्य, गुरु, मंगल, शनि में से कोई प्रश्नलग्न में हो तो पुत्र; शुक्र, चन्द्रमा, बुध हो तो कन्या कहे। परन्तु अंक प्रश्न और योग प्रश्न को भली प्रकार सोच कर कहे तो इस लोक में वह पुरुष उपहास को प्राप्त नहीं होता।' भाव यह है कि केवल अंक प्रश्न द्वारा नहीं कहना चाहिए। श्लोक ८७ की व्याख्या में हम ने ग्रन्थान्तरों के आधार पर इस विषय सम्बन्धी विचार किया है। उन योगों और अंक प्रश्न की सहायता से पुत्रकन्या सम्बन्धी प्रश्न का विवेचन करके उत्तर देना चाहिए। हमारा विश्वास है कि अंकों की अपेक्षा योगों के आधार पर फलादेश कहना चाहिए ।।१६३।।

एकस्मिन्प्रकृतिः शुभेन सहिते सौख्यातिरेकः क्षपा-
नाथेन श्रुतिरद्भुता प्रसरति, क्रूरेण पीड़ोद्भवः ।
शुक्रे सप्तमगे स्त्रियाः पतिगतं पुत्रादिकं वा पदं
पृच्छंत्याः सुरतस्थितावनुभवो वाच्योऽष्टमस्थेपि च ।।१६४।।

अर्थ—पति सम्बन्धी, पुत्र सम्बन्धी या स्थान सम्बन्धी प्रश्न पूछने वाली स्त्री के सप्तम स्थान में यदि शुक्रमात्र (अकेला शुक्र) हो तो वैसी ही

प्रकृति रहेगी अर्थात् पदादि प्राप्ति न होगी। शुक्र शुभ ग्रह के साथ हो तो सुख की अधिकता, चन्द्रमा के साथ हो तो विशेष कीर्ति फैले, पाप ग्रह के साथ शुक्र हो तो क्लेश उत्पन्न हो (अथवा क्लेशयुक्त पद की प्राप्ति हो)। जैसा सप्तमस्थ शुक्र से विचार किया है वैसा ही अष्टम भाव से भी करना चाहिए ॥१६४॥

व्याख्या—पुरुष की कुडली में शुक्र को स्त्रीकारक और स्त्री की कुंडली में शुक्र को पति का कारक माना गया है। इसलिए यदि स्त्री द्वारा प्रश्न करने पर सप्तमभाव में शुक्र हो तो शुक्र की लग्न (स्त्री स्थान) पर दृष्टि होने से पति की प्रकृति का वैसा ही बना रहना उचित ही है, अर्थात् उसके स्वभाव अथवा पद सम्बन्धी कोई परिवर्तन न होगा। यदि शुक्र के साथ बुध (शुभग्रह) हो तो पति के लिए तथा लग्न को देखने से स्त्री-पुरुष दोनों के लिए सुख का कारण हुआ। यदि शुभ ग्रह गुरु शुक्र के संग सप्तम हो तो सप्तम में स्थिति होने से तथा लग्न, तृतीय (विक्रम स्थान) और लाभभाव (पति का पुत्रभाव) पर दृष्टि होने से शरीर, धन और पुत्र द्वारा सुख होने से सुख की वृद्धि ही होगी। शुक्र यदि चन्द्रमा के साथ हो तो भी शरीर सुख तथा धनादि की वृद्धि ही करता है, बीजरूप होने से। मङ्गल शुक्र सप्तम में होने से क्लेश बढाते हैं क्योंकि विग्रहकारक मङ्गल पतिकारक शुक्र के साथ होने से पति को या पति द्वारा पीड़ा, तथा चतुर्थाष्टम क्रूर दृष्टि से दशम (पति के सुख भाव) और द्वितीय (स्त्री के धनभाव) भाव को देखने से धन नाश और सुख की हानि करता है। शनि इसी अवस्था में सुखभाव को देखने से सुख की हानि ही करता है। सूर्य भी शुक्र के साथ होने से उसके तेज को कम करता है और लग्न पर क्रूरदृष्टि होने से क्लेश की वृद्धि करता है। अष्टमभाव में शुक्र के साथ चन्द्रमा या बुध धनभाव को देखने से धन की वृद्धि करते हैं। गुरु चतुर्थभाव (सुखभाव) पर दृष्टि द्वारा सुख की वृद्धि और धनभाव पर दृष्टि से धन लाभ कराता है। वैसे ही अष्टमस्थान पति का धन-

स्थान है और उसमें शुभ ग्रहों की स्थिति धनदायक और पापग्रहों की स्थिति धन नाशक है। इसी प्रकार मङ्गल, शनि, सूर्य आदि क्रूरग्रहों की दृष्टि द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि अष्टमभवन में शुभग्रहों का यदि शुक्र के साथ संयोग हो तो पति के लिए शुभ, क्रूर ग्रहों का संयोग हो तो अशुभ होगा ॥ १६४ ॥

अब दो श्लोकों द्वारा निहित (गड़े हुए) धन के लाभालाभ पर विचार करते हैं—

तुर्यं पश्यति तुर्यपोऽस्ति निहितं क्रूरेऽपि तस्मिन्भ-
वेन्न प्राप्तिः खलु खेचरे च सदधिष्ठानं तदिदौ स्थिते ।
स्वामिप्रेक्षणवर्जितेऽपि च तदस्तित्वं न तद्वार्षिके
लाभश्चन्द्रयुगीक्षणेन रहितं पूर्णं च चन्द्रेक्षणम् ॥ १६५ ॥

अर्थ—यदि चतुर्थस्थान का स्वामी चतुर्थभाव को देखे तो गड़ा धन है, उस पर (चतुर्थभाव पर) पापग्रह की दृष्टि होने से भी गड़ा धन है किन्तु प्राप्ति न होगी। चतुर्थ भाव में किसी भी ग्रह के होने पर गड़ा धन पात्रादिक में है। वहाँ (चतुर्थ स्थान) यदि चन्द्रमा हो और चतुर्थभाव चतुर्थेश से अदृष्ट हो तो भी निहित धन है। चन्द्रमा की युति दृष्टि विना एक वर्ष तक लाभ हो, चन्द्रमा की दृष्टि हो तो पूर्ण लाभ हो ॥ १६५ ॥

व्याख्या—श्लोक ४६ में ग्रन्थकर्त्ता ने स्पष्ट किया था कि चतुर्थ भाव से निधि (निहित द्रव्य) का विचार करना चाहिए। महर्षि पराशर ने भी ऐसा ही लिखा है—**निधिक्षेत्रगृहं चापि...पातालाच्च निरीक्षयेत्।** इसी कारण यहाँ चतुर्थभाव पर चतुर्थेश या शुभग्रह और विशेषतः चन्द्रमा की स्थिति या दृष्टि होने पर गड़े हुए धन का होना और प्राप्ति का निश्चय किया है। पाप-ग्रह की स्थिति या दृष्टि होने से धनादि खनिज पदार्थ के अस्तित्व का तो बोध होता है पर खोदने पर प्राप्ति नहीं होती। चतुर्थ भाव में यदि कोई अन्य ग्रह (शुभ या अशुभ) हो तो धन किसी बर्तन में सुरक्षित है। चन्द्रमा बीजरूप होने और चतुर्थ भाव का कारक होने से धन प्राप्ति में सहायक होता

है। इसी लिए जब तक चतुर्थ भाव पर चन्द्रमा का योग या दृष्टि न हो, गड़े हुए द्रव्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। ग्रन्थान्तर में भी कहा है कि **'प्रश्ने चतुर्थाधिपतिस्तत्रस्थो वावलोकते। अवश्यं वर्त्तते तत्र धनं चन्द्रेऽथवा वदेत्। वित्तेशे धनगे वंधौ वाऽस्ति तत्र धनं बहु। पापे तुर्यगते द्रव्यं स्थितं तूर्णं न लभ्यते॥'** अर्थात् 'चतुर्थेश यदि चतुर्थभाव में हो या चतुर्थभाव को देखे या चन्द्रमा चतुर्थ हो तो अवश्य धन निहित है। धनेश धनभाव या चतुर्थभाव में हो तो बहुत धन है, पापग्रह चतुर्थभाव में हो तो धन तो है किन्तु शीघ्र नहीं मिले'॥ १६५॥

योगेऽस्तित्वविधायके हिमरुचिर्नीचे विनष्टोऽपि वाऽ–
मावस्यानिकटस्थितोपि कथित: प्राज्ञै: प्रमाणं तथा।
लाभे चन्द्रयुगीक्षणे न भवत: सौम्यस्यते स्तस्तदा
वर्षेऽन्यत्र निधिग्रहाय सुधिया कार्य: प्रयत्नो महान्॥१६६॥

अर्थ—निहित धन के योग के मिलने पर यदि चन्द्रमा नीच हो, विनष्ट हो अथवा अमावस्या के निकट हो तो धन निकालने के लिए यत्न नहीं करना चाहिए। लाभभाव चन्द्रमा से युक्त या दृष्ट न हो पर अन्य शुभ ग्रहों का योग दृष्टि हो तो एक वर्ष बाद धन निकालने का यत्न करे॥१६६॥

व्याख्या - श्लोक १६५ में दिए गए निहित धन सम्बन्धी यदि कोई योग मिलता हो जिस से यह सिद्ध हो कि गड़ा धन सचमुच है तो उसे प्राप्त करने की अवधि को कहते हैं। प्रश्नकालीन चन्द्रमा यदि नीचराशि अर्थात् वृश्चिकराशि का है, या 'विनष्ट' भाव क्रूराक्रांत, क्रूरयुत, क्रूरदृष्ट या अस्त हो, या अमावस्या तिथि के निकट हो तो धन खोदने के यत्न में सफलता प्राप्त न होगी। यहां अमावस्या का वर्णन इस लिए किया गया है कि अमावस्या को सूर्य और चन्द्र इकट्ठे वास करते हैं, अर्थात् सूर्य और चन्द्र का कोणान्तर

शून्यांश होता है। (अमा सह वसतोऽस्यां चन्द्रार्कौ)। इसलिए अमावस्या के निकट हाने से चन्द्रमा अस्तप्रायः हागा । इसी प्रकार लाभ भाव शुभ ग्रहों से युत् वा दृष्ट हो पर चन्द्रमा का योग या दृष्टि लाभ भाव पर न हो, तो एक वर्ष बाद धन खोदने से प्राप्त होगा। यहाँ चन्द्रमा को बीजरूप होने और चतुर्थ भाव का कारक होने से प्रधानता दी गई है। पर यदि निहित धन प्राप्ति का योग हो और चन्द्रमा चतुर्थभाव में हो अथवा चतुर्थ भाव को देखे तो उसी समय खोदने से द्रव्य लाभ होगा, यह ग्रन्थकर्त्ता का आशय है ।।१६६।।

फलादेश कहने के लिए भाव कारकों का कथन करते हैं—

जायास्थानस्य भावा न भृगुसुतमृते नो शनिं धर्मभावा,
नो सूर्यं कर्मभावा न बुधहिमकरौ लाभभावा भवन्ति ।
विद्यास्थानस्य भावा न गुरुमवनिजं तातनिस्थान भावा
नेंदुं मृत्युर्न सर्वे न च तनयपद भार्गवं श्वेतरश्मिम् ।।१६७।।

अर्थ—स्त्रीभाव (सप्तम स्थान) का विचार शुक्र बिना, धर्मभाव (नवम स्थान) का शनि बिना, कर्मभाव (दशम स्थान) का सूर्य बिना, और लाभभाव (एकादश स्थान) का विचार बुध और चन्द्रमा बिना नहीं होता। विद्याभाव (पंचम स्थान) का विचार बृहस्पति बिना, पितृभाव का मंगल बिना, मृत्यु भाव (अष्टम स्थान) और सब भावों (द्वादश भावों) का चन्द्र बिना, और तनयभाव (पंचम स्थान) का विचार शुक्र और चन्द्रमा बिना नहीं होता ।।१६७।।

व्याख्या—यहाँ पर ग्रन्थकर्त्ता ने भाव कारकों पर प्रकाश डाला है। कारक का अर्थ है द्योतक, सूचक, व्यंजक बोधक तथा निर्देशक । जिस प्रकार राशिएँ और ग्रह अपनी अपनी प्रभावोत्पादक शक्ति के अनुसार किरण पातनों द्वारा संसार पर भिन्न भिन्न प्रभाव डालती हैं उसी प्रकार यही ग्रह द्वादश भावों के कारक होने से भी अपना विशेष स्थान रखते हैं।

साधारणतः कर्म भाव का ज्ञान दशमस्थान और दशमेश से युक्त और दृष्ट ग्रहों द्वारा उपलब्ध किया जाता है। दशम स्थान को 'राज्य' भाव भी कहा जाता है और सूर्य ग्रहपति होने से राज्यभाव का कारक सिद्ध हुआ। जैसे सूर्य अपनी चुम्बक शक्ति द्वारा अन्य ग्रहों को चलायमान करता है वैसे ही राजा भी अपनी प्रभु सत्ता से शासकों का चलायमान, नियंत्रण और निरीक्षण करता है। इसी कारण सूर्य को राजा अथवा राज्यकारक कहा गया है। अतः दशमभाव का विचार करते समय सूर्य के शुभाशुभत्व का विचार करना चाहिए। चन्द्रमा मन है और मन ही समस्त कार्यों में हमारा पथ-प्रदर्शक है। इसीलिए द्वादश भावों का फलादेश कहते समय चन्द्रमा का विशेष ध्यान रखना चाहिए। भाव यह कि उसी भाव की पूर्ण वृद्धि होगी जिस भाव का चन्द्रमा से युति दृष्टि सम्बन्ध है। इसी प्रकार सप्तमभाव का विचार करते हुए स्त्रीकारक शुक्र की अवस्था पर भी ध्यान देना चाहिए। ग्रन्थकर्त्ता का आशय यह है कि ठीक फलादेश कहने के लिए उक्त स्थान का शुभाशुभत्व, चन्द्रमा से सम्बन्ध और उस भाव के कारक-इन तीन प्रकार से विचार करना चाहिए।।१६७।।

अब एक समय में अनेक प्रश्नों के उत्तर कहने की विधि लिखते हैं—

लग्न चन्द्रोऽस्ति यस्मिंस्तदथ दिनमणिर्यत्र तद्यत्र जीवस्त-
न्नीचोऽस्तंगतो वा न यदि सुरगुरुर्वक्षितश्चेत्तदाद्यम् ।
वित्ताव्यक्षमांगजानां भवति किल बली यस्त्रयाणां तदीयं
दौर्बल्यं यत्र मन्दस्तदपि च न बली शिष्टयोर्यस्तदीयम् ।।१६८।।

एवं षट् प्रश्नलग्नान्यथ च षडपराण्येवमेषां द्वितीया-
द्येतनैव क्रमेण स्फुटमिदमुदितं द्वादशप्रश्नलग्नम् ।
एतेषां द्वादशानामपि च धनपदैर्द्वादशद्वादशैवंता-
र्तीयकैस्तथान्यैरपि सकलमिदं पूर्णमब्ध्याब्धि चन्द्रे ।।१६९।।

अर्थ—लग्न (१) जहाँ चन्द्रमा हो वह स्थान (२) जहाँ सूर्य हो (३) नीच, अस्त और वक्रगति बिना वृहस्पति जहाँ हो (४) बुध, शुक्र, मंगल इन तीनों में जो बली हो वह ग्रह (५) शनि, और यदि शनि निर्बल हो तो बुध, शुक्र, मंगल में से जो दो ग्रह शेष हों उनमें से जो बली हो (६) ॥१६८॥

इस प्रकार ये छः प्रश्न लग्न हुए। इसी क्रमानुसार अन्य छः राशियों के बलाबल विचार कर छः लग्न और हुए। सो एक लग्न से बारह लग्न उदित हुए। इसी रीति से धनभाव तथा अन्य भावों से बारह बारह लग्न कल्पित करके कुल १४४ प्रश्नलग्न हुए ॥१६९॥

व्याख्या—इन दो श्लोकों द्वारा ग्रन्थकर्त्ता ने यह बताया है कि यदि एक ही प्रश्नलग्न में प्रश्नकर्त्ता अनेक प्रश्न करे, अथवा अनेक प्रश्नकर्त्ता एक ही प्रश्नलग्न के समय में भिन्न भिन्न प्रश्न करें तो किस प्रकार फलादेश कहा जाय। आचार्य ने बताया है कि पहला प्रश्न प्रश्नकालीन लग्न से; दूसरा चन्द्रस्थित राशि को लग्न मान कर; तीसरा सूर्य यहाँ हो उस राशि को लग्न मान कर; चौथा गुरुस्थित राशि को लग्न मान कर, पर गुरु अस्त, नीच या वक्रगति न हो; पाँचवां बुध, शुक्र और मंगल में से अंशों करके जो बलवान् हो उसकी राशि को लग्न मान कर; छटा शनि जिस भाव में हो उस भाव को लग्न मान कर। पर शनि यदि हीनांश होने से निर्बली हो तो बुध, शुक्र, मंगल में से पाँचवें प्रश्न के बाद जो दो ग्रह बचें उनमें से जो बली हो उसे लग्न मान कर, इस प्रकार छः प्रश्न कहने की व्यवस्था श्लोक १६८ में कही गई है है। ग्रन्थान्तर में भी कहा है—**आदिमं लग्नतो ज्ञानं चन्द्रस्थानाद्द्वितीयकम्। सूर्यस्थानात्तृतीयं स्यात्तुर्यं जीवगृहाद्भवेत्॥ बुधभृग्वोर्बलीयः स्यात्तद्गृहात्पंचमं पुनः। राश्यानुरूपं कथयेत्संज्ञाध्यायोक्तवद् बुधः।** इस प्रकार छः लग्नों को कल्पित करने के बाद द्वादश भावों में से जो शेष छः भाव रहें उनको बलाबल के अनुसार क्रमशः छः लग्न कल्पित करे तो कुल

बारह लग्न हुए । इसी क्रमानुसार धन, पराक्रम, सुखादि शेष ग्यारह भावों में प्रत्येक भाव के बारह बारह लग्न कल्पित करने से कुल १४४ लग्न हो सकते हैं। आचार्य का मत है कि इस प्रकार एक ही प्रश्नलग्न में १४४ प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता है, अथवा १४४ प्रश्नकर्त्ताओं को एक ही प्रश्नकालीन लग्न के समय में भुगताया जा सकता है ॥१६८—१६९॥

अब उपसंहार में ग्रन्थकर्त्ता 'भुवनदीपक' ग्रन्थ की रचना के प्रयोजन पर प्रकाश डालते हैं—

ग्रहभावप्रकाशाख्यं शास्त्रमेतत्प्रकाशितम् ।
लोकानामुपकाराय श्रीपद्मप्रभुसूरिभिः ॥१७०॥

अर्थ—यह ग्रहभाव प्रकाश नामक (=भुवनदीपक) शास्त्र जनता की भलाई के लिए श्रीपद्मप्रभु सूरि द्वारा प्रकाशित किया गया ॥१७०॥

इति गर्भादिप्रश्नद्वारम् ॥३६ ॥

इति जालन्धरनगरान्तर्गत बस्तीगुजाँवास्तव्येन श्रीनानकचन्द्रात्मज श्रीदयाराम-
तनूजेन एम. ए., बी. ए. (आनर्स) इत्यादि विविधोपाधिभिर्विभूषितेन
मौद्गिल्यगोत्रोद्भवेन जोशी इत्युपाह्वेन प्राध्यापकेन कृष्णचन्द्र-
शर्मणा भुवनदीपकाख्यः ग्रन्थः व्याख्यातः सुस्पष्टीकृतश्च ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रंथः ॥

अकारादि श्लोकानुक्रमणिका

भुवन दीपक ज्योतिषशास्त्र की संस्कृत में

लिखी हुई एक कठिन पुस्तक है। हिन्दी में पहली बार इस का सरल वैज्ञानिक भाष्य प्रो. कृष्णचन्द्र जोशी एम. ए ने बड़ी खोज और परिश्रम से किया है। इस में विद्वानों तथा जनसाधारण के सुबोधार्थ मूलग्रंथकर्त्ता के सिद्धान्तों का परीक्षण और तुलनात्मक सोदाहरण परिचय भी यथास्थान दिया गया है जिस से पाठकगण केवल श्लोकों को कंठस्थ ही न करें अपितु उनके रहस्यों से भी परिचित हों।

हमारे आग्रह पर प्रौफैसर साहिब ने अपनी अंग्रेज़ी में छपने वाली पुस्तक Secrets of Astrology का हिन्दी में **ज्योतिष के गुप्त रहस्य** शीर्षक से अनुवाद किया है। इस में ज्योतिर्विज्ञान के मूल सिद्धान्तों को वेद, शास्त्र, उपनिषद्, अरण्यकादि प्राचीन ग्रंथों, अर्वाचीन वैज्ञानिक तथ्यों और आधुनिक परीक्षणों के बल पर सिद्ध कर के फलादेश कहने की नवीन परिपाटी को प्रस्तुत् कर के गागर में सागर को भर दिया है। यदि जनता ने लेखक के प्रयत्न का स्वागत किया तो शीघ्र ही प्रौफैसर जोशी की इस कृति को छपवाने का प्रबन्ध किया जायगा।

ज्योतिषाचार्य पं. रामशरणदास,

सम्पादक "पंचाङ्ग दिवाकर" एवं "ज्योतिष मार्तण्ड"

माई हीरां गेट, जालन्धर।